॥ ॐ नमोऽर्हद्भ्य ॥

# विकास की ओर

— प्रवचन —

व्याख्यान-भारती जैन कोकिला

विश्व प्रेम-प्रचारिका

आर्यारत्न,

साध्वी श्री विचक्षणश्री जी

— सम्पादक —

शान्त प्रकाश "सत्यदास"

[ काव्यतीर्थ-राष्ट्रभाषा पण्डित ]

प्रकाशक —
सुराज सागर स्वर्ण भंडार
बीकानेर

संस्करण —प्रथम
प्रतियाँ —१५००
दिनांक —अगस्त १९६३ ई०
संकलन —साध्वी श्री विनीताश्री जी
मूल्य —६२ नये पैसे

मुद्रक
श्री परशुराम सिंह
अशोक आर्ट प्रेस
४६, शिवठाकुर लेन,
कलकत्ता-७

विश्व के समस्त
धर्म जिज्ञासुओंकी
पवित्र सेवामें
समर्पित



—विचक्षणश्री

# कहाँ क्या है ?

| अनुक्रम | विषय | पृष्ठांक |
| --- | --- | --- |





# सम्पादक की कलम से

यों तो पिछले दस वर्षों से मैं साधु साध्वियोंके प्रवचनोंका सम्पादन करता आ रहा हूँ परन्तु इस पुस्तकके रूपमें आर्यारत्न श्रीविचक्षणश्री जी म० सा० के प्रवचनों के सम्पादनका मुझे पहली ही बार स्वर्णावसर प्राप्त हुआ जिसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

जहाँ तक मैं समझ सका हूँ संकुचित और अनुदारता से आर्याजी सख्त नफरत करती हैं। मानवता समन्वय और संगठन पर आप सबसे अधिक जोर देती हैं। आप चाहती हैं कि विश्वकी जनता विनाशकी ओर से मुँह मोड़ कर विकासकी ओर चले—प्रगतिके पथपर कदम रखे। विशेष क्या ! पुस्तक आपके हाथमें है ही। पढ़ लेनेपर आप अपने आप सारी विचार धारा भली भाँति समझ सकेंगे।

निम्बाहेड़ा ( राजस्थान ) में दिये गये स सार्वजनिक प्रवचनोंके भावोंको विषयानुसार नौ प्रकरणोंमें विभक्त करके व्यवस्थितरूपसे सम्पादित करा का प्रयास किया गया है। भाव आर्याजीके हैं भाषा मेरीहै।

चूंकि जन साधु साध्वियों की भाषा काफी सरल होती है इसलिए ध्यान रखने पर भी यदि कहीं सावद्य भाषाका भूल से प्रयोग हो गया हो, तो इसे मेरी ही त्रुटि समझी जाय, प्रवचनकर्त्रीकी नहीं।

—"च द न"

# १—धर्म है क्या चीज ?

धर्म-प्रेमियो !

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए क्षेत्रस्पर्शना वश आज मुझे यहाँ आकर आप लोगों के बीच कुछ कहनेका मौका मिला है।

यह मौका किसने दिया ? इसी पर पहले थोड़ा सा विचार कर। साँकल तो आप सब लोगोंने देखी ही होगी। उसमें कुछ कड़ियाँ होती हैं। आप उनमें से किस कड़ी को साँकल कहेंगे ? किसी को नहीं ! तब यह "साँकल" कैसे बन गई ? लुहारकी कृपासे। लुहारने जब प्रत्येक कड़ीको दूसरीसे जोड़ दिया तब और तभी साँकल का निर्माण हुआ। ठीक इसी प्रकार भगवान् महावीर की कृपासे साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप एक व्यवस्थित संघका निर्माण हुआ है। आप और हम उसी संघके अंग है। हम आपके हैं। आप हमारे है। यही तो कारण है कि आप हमारे पास आये हैं और हम आपके पास। हम देखकर आपको प्रसन्नता हो रही है और आपको देखकर हम।

आप श्रावक श्राविका हैं अर्थात् सुनने वाले हैं। मैं जानती हूँ कि धर्म श्रवणके ही लिये आप सब यहाँ एकत्र हुए हैं। आपकी अपेक्षाओंको पूरा करनेकी मैं कोशिश करूँगी।

आज मानवमात्रको एक भूत लग गया है—भौतिकताका। उसकी चकाचौंधमे वह धमके सात्त्विक प्रकाशको भूल गया है। भौतिकता सिखाती है कि सुख बाह्य पदार्थोंमे है—पुद्गल के सयोगोंमे है। जरूर है! पर है—क्षणभगुर। धार्मिकता कहती है कि वह सुख क्षणिक है—अनित्य है—अवास्तविक है और इसीलिए त्याज्य है। आप यदि वास्तविक सुख चाहते हैं—शाश्वत सुख चाहते हैं तो उसे बाहर नहीं, भीतर खोजिये। सच्चा सुख भोगमें नही त्यागमे है—पुद्गलमें नहीं, आत्मा में है—कर्मम नहीं, धर्ममे है!

धर्मो रक्षति रक्षित '

हिन्दुओंके शास्त्र कहते है कि यदि हम धमकी रक्षा करेंगे तो धम हमारी रक्षा करेगा। रक्षा करना धमका स्वभाव है। धम प्रत्येक प्राणीका कल्याण करने वाला है। दशवैकालिक सूत्रमें इसीलिए उसे मगलस्वरूप बताते हुए कहा गया है —

"धम्मो मगलमुक्किट्ठ

धम उत्कृष्ट मगल है। जहाँ धम है, वहाँ शान्ति है—सुख है। जहाँ अधम है वहाँ भ्रान्ति है—दुःख है। भ्रान्तिसे और अशान्तिसे बचने के लिए धमकी शरण ग्रहण करनी होगी। जनाचाय कहते हैं —

'केवलीपण्णत्त धम्म शरण पवज्जामि ॥'

ठीक यही बात बौद्धाचाय भी इन शब्दोंमे कहते है —

'धम्मं शरण गच्छामि ॥'

परन्तु धर्मकी शरण आते ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। हमे अपने मनको धर्ममे लगाना होगा और उसमे लगाकर उसे वहीं स्थिर करना होगा। जैन शास्त्र कहते हैं —

'देवावि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

—दशवै०

अर्थात् जिसका मन धर्ममें स्थिर हो जाता है—सदाके लिए दृढतापूर्वक जिसका चित्त धर्म मे टिक जाता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं फिर मनुष्य आदिकी तो बात ही क्या ! मतलब यह कि जो धर्मात्मा है वह विश्ववन्द्य है।

खैर धर्मात्मा बनने पर दुनिया हमें पूज्य माने या न माने, देवगण हमें नमस्कार करे या न करे, परन्तु अपने ही भीतरसे जो सन्तोपकी अमृतधारा प्रवाहित होती है—शान्तिकी गंगा उमड़ पड़ती है—प्रेमसागर की उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं उन सबकी तुलना दुनियाके किसी भी सुखसे नहीं की जा सकती। उस परम आनन्दको पानेके लिए हमें परम पावन धर्मका अवलम्बन करना है—उसमें अपने चित्तको रमाना है।

अब आगे चलिए। सोचिये कि जिसमे चित्तको रमाने की बार बार प्रेरणा की जाती है वह धर्म है क्या चीज ?

दुनियामे तो आज सैकड़ों धर्म प्रचलित हैं। जैन धर्म, हिन्दू धर्म, वैष्णव धर्म इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म, सनातन धर्म, वैदिक धर्म, कबीर पन्थ, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज रामकृष्ण मिशन, प्रार्थनासमाज थियोसोफि-

कल सोसाइटी, मुनिसमाज, सत्यसमाज आदि तो बड़े बड़े प्रसिद्ध धर्म हैं ही, साथ ही श्वेताम्बर—दिगम्बर, हीनयान—महायान, शिया सुन्ना, प्रोटेस्टेंट—कैथोलिक आदि विभिन्न शाखा प्रशाखाएँ भी प्रचलित हैं। इन सबके अपने अपने धर्म शास्त्र हैं। प्रत्येक का यह दावा है कि हमारा अपना धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है और इसी से जगत् का कल्याण हो सकता है। ऐसी स्थिति में जन साधारण के मन में शंका पैदा हो जाना स्वाभाविक है। क्योंकि वह निर्णय नहीं कर पाता कि किसे छोड़ें और किसे पकड़े। कौन सा धर्म हेय है और कौन-सा उपादेय! कौन सा धर्म निकृष्ट है और कौन-सा उत्कृष्ट!

भगवान महावीर ने दशवैकालिक सूत्र के माध्यम से धर्म का एक सीधा सादा लक्षण प्रस्तुत किया है —

"अहिंसा संयमो तवो ॥"

अहिंसा, संयम और तप को ही धर्म समझना चाहिये। लक्षण की इस कसौटी पर जो खरा उतरे, वही श्रेष्ठ धर्म है। जिस धर्म में अहिंसा संयम और तप पर जोर दिया गया हो, वही धर्म उत्तम है! भले ही उसका नाम कुछ भी क्यों न हो।

महत्त्व नाम का नहीं, काम का है। अहिंसा, संयम और तप की अधिक से अधिक साधना करने पर ही आप धर्मात्मा बन सकते हैं, इसलिये मेरी नहीं बल्कि भगवान् महावीर की यह सलाह है कि श्रेष्ठ धर्म की खोज के चक्कर में न पड़कर आप अपने जीवन को अहिंसामय, संयममय बनाने की कोशिश कीजिये।

अहिंसा, संयम और तप को एक शब्द में समझना चाहें तो वह शब्द होगा—त्याग, क्योंकि हिंसा के त्याग को अहिंसा कहते हैं—विषयों के प्रति इन्द्रियों की जो आसक्ति होती है उसको त्याग को संयम कहते हैं और 'इच्छानिरोधस्तपः' के अनुसार इच्छा या तृष्णा के त्याग को तप कहते हैं। इस प्रकार त्याग ही सर्वश्रेष्ठ धर्म सिद्ध होता है।

त्याग का विलोम है—भोग। विषय भोग तो पशु पक्षियों के जीवन में भी पाया जाता है, इसलिए मनुष्य भी यदि उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में जीवन बरबाद कर दे तो यह कोई बहादुरी की बात न होगी बल्कि बेवकूफी की ही बात कहलायगी। क्योंकि विषय भोगों से मिलने वाला सुख क्षणिक होता है, इसलिए उसमें सुख का आभास मात्र होता है, वास्तविक सुख नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है —

'इन्द्रियप्रभव सौख्यं, सुखाभासं न तत्सुखम् ॥"

मरुस्थल में सूर्य किरणों के प्रभाव से जल का जो आभास होता है उसे वास्तविक जल समझ कर प्यासे हरिण दौड़ पड़ते हैं तो मनुष्य उनकी इस बेवकूफी पर हँसता है, परन्तु वे आखिर पशु हैं। हँसने योग्य बेवकूफी तो उन मनुष्यों की है जो 'मनुष्य होकर भी विषय भोग के सुखाभास को वास्तविक सुख समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए दिन रात दौड़ धूप करते रहते हैं।

मुझे आशा है कि अब तक के विवेचन से आप यह भली-भाँति समझ गये होंगे कि धर्म त्याग में है, भोग में नहीं।

धर्म के विषय में एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। वह यही कि समता के साथ ही धर्म सुशोभित होता है, ममता के साथ नहीं। समता धर्म को शुद्ध बनाये रखती है पर ममता उसे अशुद्ध बना देती है। एक छोटे से दृष्टान्त से यह बात जल्दी समझ में आ जायगी।

हिमालय से निकल कर गंगा समुद्र की ओर जा रही है। उसका जल मधुर है, शीतल है, प्यास बुझाने वाला है, मधुरता, शीतलता और प्यास बुझाने की शक्ति गंगा के सारे पानी में समान रूप से मौजूद है। चार प्यासे आदमी गंगा तट पर पहुँचते हैं। एक के पास बाल्टी है एक के पास घड़ा है, एक के पास गिलास। अपने-अपने बर्तनों में पानी भरते ही वे कहने लगते हैं कि "यह पानी मेरा है—यह तुम्हारा है—यह उसका है—आदि। यह अपने पराये का भेद ममता का परिणाम है। समझदार व्यक्ति जानता है कि पात्र भेद होने पर भी पानी में भेद नहीं है। सोने चाँदी के कलश में भरा हो तो क्या। और मिट्टी के घड़े में भरा हो तो भी क्या! पानी पानी समान है।

ठीक इसी प्रकार अहिंसा, संयम और तप अथवा त्याग रूप जो धर्म है, वह किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं है। धर्म पर सबका समान रूप से अधिकार है। वह मानव मात्र के लिए समान है। कोई भी व्यक्ति धार्मिक जीवन स्वीकार कर सकता है। धर्म के सहारे अपना कल्याण कर सकता है। यह मेरा धर्म है—यह तेरा धर्म है—यह अमुक का धर्म है

आदि बातें ममता के कारण कही जाती हैं। इस ममता से समता नष्ट हो जाती है—धर्म अशुद्ध हो जाता है—घृणा और द्वेष के बादल हृदयाकाश में छाकर मनुष्य को अशान्त बना देते हैं। ऐसे व्यक्ति को धर्म का लाभ नहीं मिल सकता। *जिसका जीवन अशान्त है उसे सुख प्राप्त नहीं हो सकता।*

गीता कहती है—

"अशान्तस्य कुत सुखम्"

[ जो अशान्त है, उसे सुख कहाँ ? ]

सुख धर्मका फल है। जो दुखी है, वह धर्मात्मा कैसा ? मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि धर्मात्माओं के जीवन में कोई सकट नहीं आते। दुनिया का इतिहास साक्षी है कि धर्मात्माओं को ( तीर्थंकरों अवतारों और पैगम्बरों को भी ) जनताने खब सताया है—भगवान् महावीरके कानोंमें कीलेठोके गये। महात्मा कृष्ण को मरना पड़ा। महात्मा ईसा को क्रास पर लटकाया गया। महात्मा सुकरातको विषका प्याला पीना पडा। महात्मा गान्धी को गोली खानी पडी। इस प्रकार धर्मात्माओंको ही सबसे अधिक कष्ट उठाने पड़े हैं परन्तु धीरता और प्रचण्ड सहिष्णुता के कारण ये लोग कष्टोंको कष्ट नहीं मानते थे। काँटोंमें गुलाबके फूलोंकी तरह सकटोंमें भी सदा मुसकुराते रहते थे। इसलिए कौन कह सकता है कि वे सुखी नहीं थे ?

मुक्ति का निवास शान्ति में है—शांति का निवास समता में। इसलिए धर्मात्मा बनना हो तो ममता छोड़िये, समता अपनाइये और अपना जीवन मंगलमय बनाइये।

बस, आज इतना ही काफी है।



## २—प्रमाद छोड़िये !

सत्पुरुषो !

पुरुषार्थ करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। जो पुरुषार्थ नहीं करता—पुरुषार्थी नहीं बनता, वह पुरुष कहलाने योग्य नहीं है।

पुरुषको पुरुषार्थसे रोकने वाली बला कौन है ? प्रमाद। भगवान् महावीरने अपने प्रियतम शिष्य गौतमको प्रमादसे बचनेका बार बार उपदेश दिया है। कहा है —

"समयं गोयम ! मा पमायए ॥"

—उत्तराध्ययन

हे गौतम ! तू क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।

महात्मा बुद्धने तो प्रमादको मृत्युका कारण बतलाते हुए कहा है —

"पमादो मच्चुनो पदं ॥"

प्रभातफेरीमें किसी हिन्दी कवि की ये पंक्तियां गाई जाती हैं —

उठ जाग मुसाफिर ! भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है
जो सोवत है सो खोवत है ॥

समय अमूल्य है—जो समय नष्ट हो चुका है, वह किसी भी कीमत पर फिरसे प्राप्त नहीं हो सकता। पशु पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेकर पिछले भवोंमें हमने जो समय नष्ट कर दिया, सो कर दिया परन्तु मनुष्य योनिमें तो यह भूल न करें। सुबह का भूला शामको घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहलाता।

आज सारे संसारके राष्ट्र आगे बढ़ रहे हैं तो भारत ही पीछे क्यों रहे! समयको पहिचानकर दूसरों से सबक लेकर जो चेत जाता है वही चतुर है। भारतके प्रमादका ही यह दुष्परिणाम हुआ कि चीन ने आक्रमण करके बहुत सी भूमि हथिया ली—हड़प ली। अब भारत भी चेत रहा है—चतुराई से—संगठनसे—एकतासे काम ले रहा है और विजयके विश्वासके साथ पुरुषार्थ कर रहा है, किन्तु प्रारम्भसे ही चीनियोंकी चाल समझ कर चौकन्नेपनसे काम लिया जाता तो शायद यह नौबत न आती।

मनुष्य जीवनमें भी हमें प्रारम्भ से ही प्रमाद को जीतना है, जिससे कि आगे चल कर पछतानेकी नौबत न आ जाये।

विदेश-यात्रा करनी हो तो पासपोर्ट लेना पड़ता है। पासपोर्ट सीमित अवधि के लिए होता है। उस अवधिकी समाप्ति होनेसे पहले ही आपको उस देशका त्याग करना पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक प्राणीको अपने अपने जन्मके साथ ही आयुरूपी सीमित अवधिका पासपोर्ट मिला है। अवधि समाप्त होते ही उसे अपना शरीर छोड़कर अन्यत्र

जाना पड़ता। यात्राके पासपोर्ट से जीवनके पासपोर्टमें अन्तर यही है कि उसमें तारीख लिखी रहती है और इसमें लिखी नहीं रहती, इसलिए उसकी तारीख मालूम हो जाती है और इसकी तारीख मालूम नहीं हो पाती, परन्तु होती है जरूर भीष्मपितामह जैसे विशिष्ट ज्ञानियोंको वह तारीख मालूम भी हो जाती है और वे चौकन्ने होकर अपने जीवनको धर्माचरणके द्वारा सफल बना लेते हैं।

जिन्हें तारीख मालूम नहीं है उन्हें भी यह तो मालूम है ही कि बीता हुआ समय किसी भी हालतमें लौट नहीं सकता। जैन शास्त्र चिल्ला चिल्ला कर चञ्चल चित्तको चौकन्ना बनानेके लिए कह रहे हैं —

"जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स
अफला जंति राइओ॥"

और इसके विपरीत —

'जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तइ।
धम्मं तु कुणमाणस्स,
सफला जंति राइओ॥'

—उत्तराध्ययनसूत्र

जो जो रात बीत जाती हैं वे फिरसे नहीं लौटतीं। धर्माचरणसे रातें सफल होती हैं और दुराचरण से विफल

हमें चाहिए कि प्रमाद का परित्याग करके धर्माचरण के द्वारा अपने जीवनको सफल बनाने का प्रयास करें।

मेहमान कितने भी शानदार मकान मे ठहरे, पर उसकी उस मकान के प्रति आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि वह समझता रहता है कि मैं यहाँ कुछ दिनों के ही लिए ठहरने वाला हूँ— आगे या पीछे मुझे यह स्थान छोड़ना ही पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार हम भी सोचना चाहिये कि हम इस दुनिया मे एक मेहमान की भाँति आते हैं और मेहमान की ही तरह इसे छोड़ कर जाने वाले हैं। जाना न चाहें तो भी हमें जाना पड़ेगा।

अच्छा मेहमान कौन है ? वही जो अपने मेजबान को तकलीफ न दे। ठीक यही गुण हमे भी अपने जीवन में उतारना चाहिये। हम भी दुनियाके किसी प्राणीको कोई कष्ट न दें और इस तरह दुनिया के एक अच्छे मेहमान बनने की कोशिश करें।

बाजारमे भाव तेज हों तो सभी व्यापारी झटपट अपना-अपना माल निकाल कर बेच देते हैं और लाभ उठाते हैं क्योंकि चान्सका महत्व सब समझते है। उस परिस्थिति में यदि कोई व्यापारी अपना माल न बेचे तो उसे सब लोग मूर्ख समझते हैं, क्योंकि चान्स चूकने वालेको चतुर कौन कहेगा? भाव मन्दा होने पर ही उस प्रमादी की आँखें खुलती है और फिर वह हाथ मल मल कर पछताने लगता है, परन्तु —

'जब चिड़ियाने चुग खेत लिया,
फिर पछताये क्या होवत है ?"

ठीक इसी प्रकार मनुष्य जन्म भी एक चान्स है। चौरासी लाख जीव योनियोंमें भटकते भटकते बडी कठिनाइसे यह चान्स हाथ आया है। यदि इससे लाभ न उठा सके तो अन्तमें बुरी तरह पछताना पड़गा। कहना पड़गा —

आछे दिन पाछे गये,
हरिसों किया न हेत।
अब पछिताये होत का ?
चिरियनि चुनियों खेत ॥

चिड़ियोंके द्वारा खेतका सारा अनाज चुग लिया गया हो और तब कहीं प्रमादी किसानकी नींद खुले तो उससे हो भी क्या सकता है ? उसके पछतान से गया अनाज तो वापिस आ नहीं सकता इस लिए उस अवस्थामें उसका रोना-धोना फिजूल होगा।

हमारा आयुष्य भी एक खेत है, जिसे काल रूपी चिड़िया रात दिन निरन्तर चुग रही है —

'काल चिरैया चुग रहा,
निसि दिन आयुप खेत ॥"

जिस दिन हमने जन्म लिया था, उसी दिन से आयुष्य की फिल्म चालू हो चुकी है। एक एक दिन सामने आ रहा है और चला जा रहा है। इस तरह कई पक्ष, मास और वर्ष बीत गये है। किसी के चालीस वर्ष चले गये हैं तो किसीके साठ वर्षोंका सत्व [illegible] है। धीरे-धीरे एक [illegible] आयुष्यकी [illegible] हो जायगी और वे लोग

अपने जीवनमें कोई धर्माचरण नहीं किया है, उस समय पश्चात्तापके सिवाय और कुछ न कर सकेंगे।

मैं चाहती हूँ, आप इस तथ्यको भली भाँति समझ लें, जिससे कि भविष्य में वह पश्चात्तापका भयंकर दिन न देखना पड़े।

मानवजीवन बड़ा दुर्लभ है और जितना यह दुर्लभ है, उतना ही मूल्यवान् भी है। मनुष्यके बराबर सोचन विचारने की शक्ति और किसी प्राणी को प्राप्त नहीं हुई है। तीर्थंकर कहते है कि मोक्षका अधिकारी केवल मनुष्य ही हो सकता है, दूसरा कोइ प्राणी नहीं। अपनी आत्मा को उज्ज्वल करके मनुष्य मोक्ष तक जा सकता है।

मेरी बहिनें नाराज न हों, मोक्षका अधिकार उन्हें भी है। "मनुष्य' शब्दका प्रयोग तो मैं इसलिए करती हूँ कि उसमें स्त्री-पुरुष दोनोंका समावेश हो जाता है। भगवान् महावीरने साधुसंघके समान साध्वीसंघ इसीलिए बनाया था। भगवती मल्ली कुमारीने तो १९ वें तीर्थंकरका पद भी प्राप्त करके यह सिद्ध कर दिया था कि आत्मकल्याण की साधनामें नरके समान नारी भी पराकाष्ठा तक पहुँच सकती है। परम गति प्राप्त करने वाली सोलह सतियों का स्मरण पुरुष भी प्रातःकाल करते ही हैं —

"ब्राह्मी चन्दन बालिका भगवती,
राजीमती द्रौपदी।

कोशल्या च मृगावती च सुलसा,
सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता,
चूलप्रभावत्यपि ।
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे,
कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥"

हाँ, तो मैं कह रही थी कि प्रत्येक मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकता है। शर्त यह है कि वह प्रमाद छोड़ और धर्माचरण का पुरुषार्थ करे।



# ३--भेद विज्ञान

भव्यात्माओ !

अपनी आत्मा को भव्य बनाने के लिए पापों से बचना जरूरी है और इसके लिए जरूरी है—भेद विज्ञान। अधिकांश पाप अपने शरीर या इन्द्रियों के पोषण के लिए ही किये जाते है, इसलिए शरीर और आत्मा के भेदको समझ लिया जाय तो आसानी से पाप प्रवृत्ति छूट सकती है। आज इसी विषय पर विचार करेंगे।

तिलों में तैल की तरह शरीर में आत्मा व्याप्त है। शरीर जितना बड़ा होता है, आत्मा भी उतनी बड़ी हो जाती है। जो शरीर का आकार रहेगा, वही आत्मा का आकार रहेगा। अंधेरी कोठरी में एक दीपक जलाया जाय तो उसका प्रकाश सारी कोठरी में फैला रहेगा परन्तु उसी दीपक पर यदि एक कटोरा उलटा रख दिया जाय तो कमरे भरका सारा प्रकाश सिमट कर उस कटोरे के भीतर सीमित हो जायगा।

—इस सुन्दर दृष्टान्त के द्वारा जैनाचार्यों ने उस शंका का समाधान किया है, जिसमें पूछा जाता है कि जो आत्मा हाथी के शरीर में रहती है वही एक छोटी सी चींटी में कैसे समा सकती है! कोठरी या कटोरे के स्थान पर आप विभिन्न देहों को समझ लीजिये और उनमें दीपक की लौके समान

आत्मा मानिये। इस तरह यह शंका सर्वथा निर्मूल हो जायगी।

हम कहते हैं, "अमुक आदमी मर गया", किन्तु जिस शरीर को हम पहले देखते थे वह तो अब भी ज्यों का त्यों मौजूद है, फिर कौन मर गया? शरीर में जो चेतना थी, वह चली गई। जो चली गई, वही आत्मा है। जो जलाया जाने वाला है, वही शरीर है।

आत्मा को कौन जला सकता है? आग में भी यह शक्ति नहीं है। आत्मा को कौन काट सकता है? किसी भी शस्त्र में ऐसी शक्ति नहीं है। आत्मा न पानी से गीली हो सकती है और न हवा से सूख सकती है। जैसा कि गीता में कहा गया है —

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,
नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो,
न शोषयति मारुतः॥"

गीता ही क्यों? कुरान, पुराण, भगवती, भागवत आदि सारे धर्मशास्त्र यह भेद—पुरुष और प्रकृति का यह अन्तर—शरीर और शरीरी (आत्मा) का यह फर्क समझाने के लिए ही अनुभवी सन्तों द्वारा रचे गये हैं।

किसी कविने गाया है —

"आप अच्छी तरह जीवन
...को खेल समझा है

ज्ञानकी आगसे अब
वासनाका बीज जल जाये ॥
—गीतावश्यकमन्त्र

अपने जीवन मरणको खेल वही समझ सकता है जो शरीर और आत्मा का भेद समझता हो। नाटक में एक ही पात्र विभिन्न रूप धारण करके अभिनय दिखाता है। इसी तरह एक ही आत्मा विभिन्न शरीर धारण करता है। कभी राजा बनता है, कभी रंक—कभी अमीर बनता है, कभी गरीब कभी स्वस्थ रहता है, कभी अपंग या अपाहिज—कभी घोड़ा बनकर हिनहिनाता है, कभी गधा बनकर रेंकता है—कभी चूहा बनता है, कभी चीता। यह सब बनने वाला कोई अलग तत्त्व है, जिसे चैतन्य कहते हैं-जीव कहते हैं—आत्मा कहते हैं।

शरीर नश्वर है—अनित्य है और आत्मा अनश्वर है—नित्य है। इस क्षणभगुर शरीर को क्षणभगुर मानना सम्यक्त्व है। आत्मा को शाश्वत मानना भी सम्यक्त्व है। इससे विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

पहनने का वस्त्र मैला हो जाय तो आप लोग क्या करते हैं? साबुन और जल से उसे धोकर स्वच्छ बना लेते हैं। भेद विज्ञान भी ऐसा ही एक साबुन है, जो समता रूपी जल के साथ आध्यात्मिक शुद्धि में उपयोगी बनता है। "समयसार नाटक में कहा गया है —

"भेदज्ञान साबुन भयो,
समता निर्मल नीर।

धोयी अन्तर आत्मा,
धोवे निजगुण चीर ॥"

बगुला दूध में मिले हुये पानी को पी जाता है, पर हंस ऐसा नहीं करता। वह पानी से दूध को अलग करके ग्रहण करता है। विवेकी आत्माएँ भी शरीर और शरीरी का भेद समझकर दोनों का उनके योग्य ही आदर करती हैं, परन्तु बगुले की तरह मूढ़ लोग शरीर को ही आत्मा मान बैठते हैं और शरीर के रक्षण और पोषण में ही सारी आयु समाप्त कर देते हैं।

आत्मा को थोड़ी देर के लिए सेठ मान लिया जाय तो शरीर को मुनीम मानना पड़ेगा। यदि मुनीम की गलती से व्यापार में घाटा हो जाय तो उसकी पूर्ति कौन करेगा? सेठ करेगा, मुनीम नहीं। शरीर पाप करेगा तो फल आत्मा भोगेगी। शरीर तो यहीं रह जायगा। परलोक में साथ नहीं आयगा। वहाँ पूर्वभव के पाप का कड़ुआ फल अकेली आत्मा भोगेगी।

नरक में घोर यन्त्रणाएँ भोगने के लिये पूर्वभव का शरीर आत्मा का साथ न देगा। पूर्वभव और परलोक की बात छोड़िये, इस भव में भी ऐसे अनुभव प्रतिदिन होते हैं। मीठा और कोमल समझ कर जीभ यदि मर्यादा से अधिक हलुआ चट कर जाय तो अजीर्ण का और अफीण के प्रभाव से होने वाली भयंकर बीमारियों का दुःख क्या जीभ भोगती है? कभी नहीं। ...न्त तो आत्मा को ही उठाना पड़ता है।

आदिकाव्य "रामायण" के रचयिता वाल्मीकि इसी भेद-विज्ञान के प्रताप से सम्हल कर डाकू से महर्षि बन गये थे। उन्हें यह मालूम हो गया था कि जिस परिवार के लिए मैं इतनी हत्याएँ और लूटपाट करता हूँ, उसका एक भी सदस्य मेरे इस पाप के फल में साझीदार न होगा— पापका पूरा फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। यह जानकारी होते ही तुरन्त वे विरक्त हो गये और स्वपर कल्याण की साधना में जुट कर अमर हो गये। यह कथा काफी प्रसिद्ध है इसलिये विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है।

हाँ, एक सेठजी को किस तरह भेद विज्ञान हुआ सो कथा जरा विस्तार से सुनाकर मैं आज का अपना वक्तव्य समाप्त करूँगी।

एक छोटा-सा गाँव था। उसमें चतुरचन्द नामक एक सेठजी रहते थे। सेठानीकी कोखसे पहले एक कन्या हुई और उसकी पीठ पर दो पुत्र हुए। कन्याकी शादी हो चुकी थी। दोनों पुत्र अभी छोटे थे और बड़े होते तो भी क्या? सेठजी जानते थे कि पुत्रोंका विवाह कोई घाटेका नहीं, बल्कि लाभका ही सौदा होता है। इसलिए वे निश्चिंत होकर कमाते और बिना कन्जूसीके उसका दिल खोलकर उपभोग करते थे।

सेठ चतुरचन्दका मुख्य व्यापार कपासका था। वे फुटकर कपास खरीदते और एक साथ बेचते थे।

विज्ञान एक अच्छी चीज है—यदि उसका दुरुपयोग न किया जाय। जिस विज्ञानसे क्षण भर में देशविदेश के समा-

भार इधर से उधर पहुँचाने वाले रेडियो जैसे अद्भुत यन्त्रका आविष्कार हुआ, उसीसे अणुबम जैसे संहारक शस्त्रास्त्रोंका भी निर्माण किया जा रहा है। स्पष्ट ही विज्ञानका यह दुरुपयोग है। वैज्ञानिकों की कट्टर राष्ट्रीयता या स्वार्थपरता ही इसका कारण है।

सेठजी भी बड़े मनोवैज्ञानिक थे। आकृति और बात करनेके ढंगसे ही वे आगन्तुकको अच्छी तरह पहिचान लेते थे कि वह कितने गहरे पानीमें है—कितना जानकार है—कहाँ तक पढ़ा लिखा है, किन्तु स्वार्थके लिए वे अपने इस मनोविज्ञान का दुरुपयोग किया करते थे। भोले-भाले ग्रामीणोंको ठग लिया करते थे। विश्वासघात करनेके किसी अवसर को वे चूकते नहीं थे।

एक दिन एक ग्रामीण बुढ़िया उनकी दूकान पर आई। अपने सिर पर वह कपासकी भरी हुई एक गठरी लाई थी। उसे उनके सामने रखते हुए उसने कहा — 'सेठजी! कपास तौल कर ले लीजिये और हिसाब के अनुसार पैसे दे दीजिये।'

सेठजी कपास तौलते हैं। उस का मूल्य २५ रु० आँकते हैं। ठीक उसी समय उनके मनमें लोभका भूत घुस जाता है और वह उन्हें विश्वासघात करनेके लिए प्रेरित करता है। वे सोचते हैं कि यह बुढ़िया पढ़ी लिखी तो है नहीं इसलिए २५ रु० के [illegible] २० रु० दे दूँ तो भी यह क्या समझ पायेगी।

इतना हुआ ? और [illegible]

भाव है ? तथा भावके अनुसार इस कपासका असली मूल्य क्या है आदि बातें वह नहीं जानती। इसे हिसाब करने योग्य गणित का ज्ञान भी नहीं है।

ऐसा सोच कर २५ रु० के बदले २० रु० के ही नोट बुढ़िया के हाथमें सेठजीने थमा दिये। बुढ़िया उन्हें लेकर चुपचाप वहाँसे चलती बनी। जितने रुपये आये, उतनेमें ही वह सन्तुष्ट थी। सन्तोषी सदा सुखी होता है। गुजरातमें एक कहावत प्रसिद्ध है —

*"खावाने रोटलो। बेसवाने ओटलो॥"*

खानेको रोटी और बठनेको चबूतरेकी थोडीसी जगह मिल जाय तो भी जीवनके लिए पर्याप्त है। मनुष्य तृष्णासे ही दुःखी होता है। तृष्णाकी कभी तृप्ति नहीं हुई—न होती है—न होगी। यह जानते हुए भी मनुष्य अपनी तृष्णाको तृप्त करने के लिए दिनरात दौड़-धूप करता-रहता है। इसके लिए बड़े से बड़ा पाप करने में भी नहीं हिचकिचाता।

*तृष्णा मनुष्यको पागल बना देती है—अन्धा बना देती है।* हिन्दीके एक महाकवि कहते हैं —

'आँखिन आछत आँधरा
जीव करे बहु भाँति।
धीरज धीरज बिनु करे,
तृष्णा कृष्णा राति॥"

तृष्णा काली रात के समान आँखों वाले मनुष्योंको भी अन्धा बना देती है। सारे भयके बड़े बड़े धैयशालियोंका धैय भी छूट जाता है। प्रलोभन का शिकार बन कर जो अपना कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य भूल जाता है, उस मनुष्यको अन्धा ही समझना चाहिये।

चतुरचन्द सेठ भी अपना कर्त्तव्य भूल कर इसी तृष्णाके कारण अन्धे हो गये थे। पाँच रुपयोंकी बचत हो गई थी, उनका उपभोग करना चाहते थे। नौकर को बुलाकर उसके साथ पाँच रुपयेका माल खरीदा हुआ घर भेज दिया और सन्देश भिजवा दिया कि आज खूब मालपूए-पकौड़ी-कचौड़ी दहीवड़े बनाये जायँ। मैं दो घंटे में स्नान करके आता हूँ, तब तक सब कुछ तैयार होना चाहिये।

नौकरने सेठानी जी को सामग्री ले जा कर देते हुए सेठजी का सन्देश सुना दिया।

भारतीय नारियाँ पतिपरायणा होती हैं। अपने पतिको वे देवतातुल्य मानती हैं। उनकी आज्ञाओंका पालन करना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। उनकी इच्छाओंकी पूर्त्ति करनेमें अपना अहोभाग्य समझती हैं।

सेठजीके सन्देशको शिरोधार्य करके सेठानी मालताल बनाने में जुट गई। घंटे डेढ़ घंटेमें सारा पक्वान तैयार हो गया। पतिदेव के लिए उसने आसन बिछाया, बाजोठ लगाया और एक पत्रा ... आगमन की प्रतीक्षा में बैठ

सोचने लगी कि स्नान करनेके बाद भूख कुछ बढ़ जाती है। सेठजी स्नान करके आयगें तो उनकी भूख तेज होगी। आते ही वे भोजन परोसन के लिए कहेंगे। मैं परोसूंगी और पखा झलते हुए उन्हें खिलाऊँगी। मेरी सेवाको—मेरे परिश्रमको इस सुन्दर सुगन्धित पक्वानके रूपमें देख कर वे बहुत बहुत प्रसन्न होंगे। उनकी प्रसन्नता से मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी। मेरा जीवन सफल हो जायगा आदि।

परन्तु कुदरतको कुछ और ही मन्जूर था। मनुष्य सोचता क्या है और होता क्या है। आशाएँ हमेशा सफल नहीं हुआ करतीं। उस भ्रमरकी आशाओं पर किस तरह पानी फिर गया था? सुनिये —

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कज श्री।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त! हन्त!! नलिनी गज उज्जहार॥

सूर्यास्त होते ही कमलके कोष में बन्द भौंरा मनमें सोच रहा था कि रात बीतेगी, प्रभात होगा, सूरज उगेगा, कमल फिर से मुस्कुरायेगा और उस समय इस कैद से मेरा छुटकारा हो जायगा, परन्तु हाय! हाय!! उसी समय वहाँ आकर उस कमलिनीको एक हाथीने तोड़ डाला। भौंरे की आशाएँ भौंरेके मनम ही रह गई। मनुष्य भी इसी प्रकार अपने मनमें सैकड़ों सकल्प करता है—हजारों कार्यक्रम बनाता है—लाखों

आशाएँ रखता है परन्तु काल या मृत्यु रूपी हाथी आकर उसके सारे इरादों पर पानी फेर देता है।

सेठानीजी की भी आशाएँ सफल न हुई। सेठजीके पहले ही वहाँ जमाई जी आ पहुँचे। अपने साथ एक मित्रको भी लाये थे वे। सासूजी को प्रणाम आदि करके कुशल पूछने के बाद उन्होंने कहा कि हमें अधिक ठहरने का समय नहीं है। अत्यन्त जरूरी काम है। इसके लिए दूसरे गाँव आज ही शाम तक पहुँचना है। अन्यथा आना न आना बराबर हो जायगा। इस लिए आप हमारे लिए नई रसोई बनाने की खटपट में न पड़ कर रसोई घरमें जैसी भी रसोई तैयार हो, वही परोस दीजिये।

अब सेठानी बड़े विचार में पड़ गई। मालपूए सेठजीके लिए रखूँ या जमाई जी को परोसूँ। नई रसोई बनाने तक ये ठहरनेको तैयार नहीं है। इन्हें भूखे लौटा कर घर की नाक कटाई नहीं जा सकती। कहीं ये नाराज हो गये तो मेरी बेटी को तकलीफ देंगे। क्या करूँ? आखिर सेठानीजी ने यही निर्णय किया कि मालपूए गरमागरम तैयार है वही परोस देना चाहिये। थाली लगा कर मालपूए पकौड़ी आदि सामग्री परोस दी गई। दोनों मित्र भूखे थे। बाँहें ऊँची चढ़ा कर भिड़ गये और देखते ही देखते सारा माल सफाचट्ट कर गये। सासूजी सोचने लगी कि नमूने के लिए आधा मालपूआ ही बच जाय तो सेठ... हो सकता है परन्तु

भी न बचा ! जमाई जी हाथ धोकर मित्रके साथ तुरन्त वहाँ से विदा हो गये।

उधर सेठ जी स्नान करने गये थे। मल-मल कर उन्होंने स्नान किया। कपड़े धोये। नई पोशाक पहिनी और आनन्दसे घरकी ओर चल पड़े। मालपुए खाने का काल्पनिक सुख लूटते हुए ज्यों ही वे घर पहुँचे और आसन पर बैठे त्यों ही उनकी सारी कल्पनाओंका कचूमर निकल गया उन्होंने देखा कि सामने परोसी हुई जो थाली रखी है उसमें सदा की भाँति सादी रसोई है, मालपूओंका एक टुकड़ा भी नहीं ! उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे जानते थे कि मेरी पत्नी बड़ी आज्ञाकारिणी है। सामानकी भी घरमें कोई कमी नहीं है। जो कुछ सामग्री कम पड़ सकती थी, वह भी मैं नौकरके साथ यहाँ भिजवा चुका हूँ। तब क्या कारण है कि आज सेठानीने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया।

सेठानी सेठजीके मनकी शंका जान गई थी इसलिए उन्हें पूछने के संकोचमें न डाल कर स्वयं ही पिछली घटना जैसी बनी थी वैसी कह सुनाई।

सेठजी विचारमग्न हो गये। जब मनुष्य प्रमादनिद्रा छोड़ कर जागृत हो जाता है तब उसे अपने पाप प्रत्यक्ष से दिखाई देने लगते हैं। प्रत्येक कौरके साथ उन्हें उस दिन उस बुढ़िया की भोली भाली सूरत दिखाई दे रही थी। अपनी जिह्वा लोलुपताको शान्त करने के लिए उन्होंने बुढ़ियाके साथ

विश्वासघात किया था। उसके पाँच रुपये ठग लिये थे। कितना बड़ा पाप कर डाला था माल खानेके लिए। परन्तु आखिर माल भी तो नहीं मिल सका। माल खा लिया जमाई ने और परलोक में इस पापके बदले मार खानी पड़गी मुझ! यह कैसी उल्टी बात? यह कैसी मूर्खता?

सेठजीने उसी दिन अपना परलोक सुधारनेके लिए यह दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि भविष्य में कभी किसीका एक नया पैसा भी अन्याय पूर्वक ग्रहण करने की कोशिश न करूँगा। पापका फल पाप करने वाली आत्मा को ही भोगना पड़ता है, न जीमका और न जमाई आदि और किसी प्राणीको।

इस भेदविज्ञानने उनको आत्माको दूसरी ओर—धर्मकी ओर—न्यायकी ओर मोड़ दिया। वे यह भलीभाँति समझ गये कि इस शरीरके लिए कोई पाप न करना चाहिये। शरीर अलग है और आत्मा अलग।

सेठजी तो विचार शील थे इसलिए समझ गये और उन्होंने आत्म सुधार का मार्ग पकड़ लिया; परन्तु मैं आप लोगों से यह पूछना चाहता हूँ कि आप भी कुछ समझे या नहीं। क्या आप उस सेठ के बराबर भी अब तक अपनी आत्मा को जागृत नहीं कर सके? क्या अब तक सुने हुए आपके सारे धर्मोपदेश व्यर्थ गये? क्या आप धार्मिक प्रवचन केवल इसीलिए सुनते हैं कि लोग आपको "धर्मात्मा" समझें—भले ही धर्म ने आपके जीवन में स्थान न पाया हो?

खूब याद रखिये ! धर्मात्मा कहलाने से नहीं, धर्मात्म बनने से ही आपका जीवन सफल हो सकेगा। इसलिए लो आपको कुछ भी कहें और कुछ भी समझें, उनके कहने सम झने की परवाह न करके आप सीधे धर्मात्मा बनने की कोशि कीजिये।

उस दिन सेठ चतुर चन्द ने कोई धर्मोपदेश नहीं सुना था, फिर भी वे धर्मात्मा बन गये। विचारों ने उनकी चित्त-वृत्ति का बदल दिया था। आप भी विचार कीजिये—यहाँ काई दाग तो नहीं है ? कोई दोष तो नहीं है ? यदि वैसा कुछ हो तो पश्चात्ताप की अग्नि द्वारा उसे भस्म कर डालिये ! और प्रभु भक्ति की गंगा में स्नान करके पवित्र बन जाइये ! आपके इस प्रयत्न में यह विचार सहायक होगा कि शरीर से आत्मा अलग है, भले ही वह कमल में सुगन्ध की तरह शरीर मे व्याप्त हो।



## ४—क्षण भंगुरता

नित्यात्माओ !

इस ससार में आपकी आत्मा ही नित्य है, शेष सब कुछ अनित्य है—क्षणभगुर है ! आज है सो कल नहीं। किसी कविता की ये पक्तियाँ कितनी उत्तम हैं —

"फूल फल उद्यान में
फूला फला देखा अहो।
आज 'सूरजचद' वह
कुम्हला गया क्यों कर कहो ?
एक सा होता कभी
ससार का प्रति पल नहीं।
यह दशा अपनी समझ लो,
आज है सो कल नहीं ॥"

आप और किसी को नहीं, अपने आपको ही देखिये। जब आपका जन्म हुआ था, तब आप कितने छोटे से शरीर में रहते थे ? फिर बच्चे बने, बालक बने, किशोर बने, तरुण बने और आज आपका शरीर कितना बूढ़ा हो गया है ? कहाँ गया वह जवानी का जोश ? कहाँ गई वह दौड़-धूप की क्षमता ? कहाँ गायब हो गये वे गुलाबी गाल ? वे चमकीली आँखे आज क्यों भीतर धँस गई हैं ? सोचिये !

जो शरीर इन पचास साठ सालों में ही इतने रंग बदल चुका है, उसका क्या भरोसा किया जाय ? इसे क्यों अपना माना जाय ? इसके लिये उसके सुख के लिए क्यों पाप किये जायँ ? क्यों परलोक बिगाड़ा जाय ?

रात को हम मीठे मीठे सपने देखते हैं—प्रसन्न होते हैं और कभी कभी भयंकर दृश्य सपने में देखकर काँपने भी लग जाते हैं, परन्तु प्रातःकाल होते ही—असलियत का पता लगते ही वह सारा हर्ष और वह सारा शोक गायब हो जाता है। हम समझ लेते हैं कि जो भी दृश्य सपने में देखे गये थे और उनसे जो प्रभाव सुख दुख के रूप में हमारे मन पर पड़े थे वे सब कल्पित हैं।

संसार भी एक ऐसा ही सपना है। शंकरजी पार्वती से रामचरितमानस में कहते हैं —

'उमा ! कहौं मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना॥"

—गो० तुलसीदास

फर्क यही है कि रात का सपना जहाँ सिर्फ साठ-सत्तर मिनिटों का होता है, वहाँ जीवन का सपना होता है—साठ सत्तर वर्षों का।

दोनों में एक बड़ा भारी अन्तर यह भी कहा जा सकता है कि जगत् का सपना जहाँ आँख बन्द होते ही खत्म हो जाता है वहाँ रात का सपना आँख खुलने पर खत्म होता है। कहा भी है —

'संमीलने नयन योन हि किञ्चिदस्ति॥"

जब तक आँखें खुलती हैं—हम जावित हैं, [illegible] 'मेरा मेरा' किया करते हैं—"अपना अपना" [illegible] हैं—ममताके चक्करमें आत्मस्वरूप भूल [illegible] आँखें बन्द हुई कि समझना पड़ता है—अपना [illegible] सपना ही सपना है।

विवेकी मनुष्य आँख बन्द होने से ([illegible]) [illegible] ऋषि महर्षियोंके प्रवचनोंसे अथवा धर्मग्रन्थोंके [illegible] यह जान लेते हैं कि जीवन सपने के समान है—[illegible] भगवान महावीर स्वामीने यही तो कहा था —

"कुसग्गे जह ओसबिंदुए,
थोवं चिट्ठइ [illegible],
एवं मणुआण जीवियं,
समयं गोयम! मा [illegible]"

—[illegible]

जैसे कुशा (तिनके) के अग्रभाग पर [illegible] ओसका बिन्दु थोड़ी ही देर तक ठहरता है, [illegible] जीवन है—ऐसा समझ कर हे गौतम! तू [illegible] प्रमाद मत कर।

तिनकेकी नोक पर रहने वाली पानी की बूँद हवा का जरा सा झोंका आते ही गिर कर मिट्टीमें मिल जाती है। ठीक इसी प्रकार मृत्युका आक्रमण होते ही हमारा जीवन भी

मिट्टीमें मिल जाता है—नष्ट हो जाता है। सपने की क्षण भंगुरता पर सबका विश्वास जम जाता है, पर जीवन की क्षणभंगुरता पर जल्दी विश्वास नहीं जमता।

कोई-कोई व्यक्ति तो इतने मूढ़ और दुराग्रही होते हैं कि सपने को भी सच्चा मान बैठते हैं। एक दृष्टान्त द्वारा यह बात जल्दी ध्यानमें आ जायगी।

एक ठाकुर थे। शानदार महलमें रहते थे। ठकुराइन भी सुन्दर थी। गुणोंसे सम्पन्न थी। कामकाजमें ठाकुर साहबको भी वह सलाह दिया करती थी। वह चतुर होते हुए भी जिद्दी थी। ठाकुर साहब उसके इस स्वभावको जानते थे, इसलिए परिस्थितिके अनुकूल अपने आपको ढाल लेते थे। किसी पाश्चात्य विचारकने ठीक ही कहा है —

'यदि तुम किसी गोल छेदमें जा पड़ो तो तुम्हें अपने आपको गेंद बना डालना होगा।"

यह सूक्ति हमें परिस्थितिके अनुकूल बननेकी शिक्षा देती है। घड़ी के चक्र एक-दूसरेके अनुकूल घमकर ही सही समय बतानेमें सफल होते हैं। गृहस्थ जीवनमें भी यह गुण अनिवार्य आवश्यक होता है। परिवारके विभिन्न सदस्य विभिन्न रुचि वाले होते हैं। जो निभाना और निभना जानता है वही स्वयं सुखी रह कर परिवार को भी प्रसन्न रख सकता है। जो बात परिवारके लिए सत्य है, वही समाजके लिए भी समझ लीजिये। सासू बहू, ननँद भौजाई देरानी जेठानी आदिके

स्परिक मनोमालिन्य, गुरु शिष्यकी खटपट और मित्रोंकी कटकट भी देशको नरक बना देती है। बात बातमें परा सी तन गई तो दो घनिष्ठ मित्र आपसी दुश्मन बन जाते है। पति पत्नी का प्रेम मित्रतासे भी कुछ ऊंचा गुण है। इसमें निभना-निभाना आये बिना काम चल ही नहीं सकता।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि स्वभावोंमें भिन्नता होते हुए भी ठाकुर ठकुराइन की आपसमें खूब निभ रही थी।

एक दिन किसी जरूरी काम से ठाकुर साहब तीन दिनके लिए दूसरे गाँव चले गये। विदा होते समय वे ठकुराइनसे कह गये थे कि काम निपट गया तो आज ही शाम तक लौट आऊँगा और नहीं निपटा तो उसे पूरा निपटा कर तीसरे दिन अवश्य आ जाऊँगा।

ठकुराईनका वह दिन सखियों के साथ हंसी ठिठोली करते हुए बीत गया। शामका सूर्यास्त होते ही वह ठाकुर साहबके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। रात हो जाने पर भी जब ठाकुर साहब लौट कर नहीं आये, तो उसके मनमें कई प्रकारके सङ्कल्प विकल्प उठने लगे। वह भूल गई थी कि काम न बननेकी दशामें ठाकुर साहबने तीसरे दिन आने की बात भी कही थी। वह शङ्का-कुशङ्काके चक्करमें पड़ कर चिन्ता करने लगी। उसी अवस्थामें उसे नींदने आ घेरा।

स्वप्न शास्त्र वाले यह कहा करते हैं कि सोते समय मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, उन्हींका मूर्तरूप सपनेमें प्रत्यक्ष

है। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सपनेमें जो कुछ देखा गया है वह वैसा होगा ही।

ठकुराईनको भी एक भयंकर स्वप्न उस रात दिखाई दिया। उसने देखा कि ठाकुर साहब जंगलमें शेर का शिकार करने गये। वहाँ उनकी गोलियाँ बेकार चली गई। प्रत्येक निशाना खाली गया और अन्तमें बन्दूकके सारे कातूस खत्म होते ही झपट कर शेरने उनके शरीर पर आक्रमण कर दिया—अपने पंजेके तीखे नाखूनोंसे ठाकुर साहब के शरीरको लहूलुहान कर दिया। ठाकुर साहब तुरन्त जमीन पर लुढक गये और उन्होंने अपनी अंतिम साँस छोड दी।

स्वप्नमें इस भयानक स्वप्न को देखते ही ठकुराईन चीख पडी। उसकी नींद नौ दो ग्यारह हो गई। उसने उठते ही तुरन्त रोना-पीटना शुरू कर दिया। गहने उतार दिये। चूडियाँ फोड दीं। ललाटका सिन्दुर पोंछ डाला। सिर पीट-पीटकर करुण क्रन्दन करने लगी।

चिल्लाहट सुनकर सहेलियाँ और दासियाँ दौडी आई। मन्त्री, नौकर चाकर आदि सब वहाँ इकट्ठे हो गये। सब लोग उसे अपने अपने ढगसे सान्त्वना देने लगे।

मन्त्रीने नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड कर प्रेम और शान्ति भरे स्वरसे पूछा —"ठकुराईन जी! आप क्यों इस प्रकार आज यह विलाप कर रही हैं?

ठकुराइन बोली —"इसलिए कि मेरा सुहाग छिन गया

है। मैं विधवा हो गई हूँ। ठाकुर साहब मुझे सदाके लिए अकेली छोड़ कर परलोक सिधार गये हैं।"

मन्त्रीने फिर पूछा — 'लेकिन आपको यह सब कैसे मालूम हुआ? कोई आदमी आकर यहाँ ऐसा शोकसमाचार सुना गया था क्या?'

ठकुराईन —"जी नहीं, यहाँ तो कोई नहीं आया। अन्त पुरमें कोई दूसरा आदमी आ भी कैसे सकता है?'

मन्त्री — 'तो क्या कोई पत्र आया था—इस विषयमें?"

ठकुराईन —"जी नहीं, किसीका कोई पत्र यहाँ नहीं आया।'

मन्त्री —"तो फिर क्या आया?'

ठकुराईन —सपना आया था। सपने में ही मैंने उन्हें अंतिम साँस छोड़ते हुए देखा था।"

मन्त्री —'और सपने की बात आपने सच मान ली?"

ठकुराईन —'क्यों न मानती? मेरा सपना कभी झूठा नहीं होता—ऐसा मेरा विश्वास है।'

मन्त्री —' फिर भी पक्के समाचार आने तक आप प्रतीक्षा कीजिएगा। मैं अभी घुड़सवार भेज कर उनके समाचार मँगवाता हूँ।'

ऐसा कह कर ठकुराईनके कहनेकी (या अनुमति की) प्रतीक्षा न करते हुए मन्त्री वहाँसे चला गया।

...मे पहुँचते ही मन्त्री ने ...

साथ दो तेज घुड़सवारों को उस गाँव की ओर भेज दिया, जिसमे ठाकुर साहब गये हुए थे।

यथास्थल पहुचकर घुड़सवारों ने पत्र दे दिया। ठाकुर साहब ने पत्र पढ़ कर उत्तर लिख दिया कि मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। किसी को मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिये। मैं तीसरे दिन लौटने की बात कह आया था। उसी के अनुसार य,ाँ का कार्य पूरा करके मैं कल शाम को लौटकर चला आने वाला हूँ।

यह पत्रोत्तर घुड़सवारों ने मन्त्री के पास पहुचा दिया। मन्त्री उसे पढ़कर प्रसन्न हुए और ठकुराईन के पास जाकर उन्होंने वह कुशल पत्र स्वयं पढ़कर सुनाया। ठकुराईन ने उस पत्रोत्तर को जाली मानते हुए कहा कि यह सब मेरा दिल बहलाने के लिए रचा गया एक षडयन्त्र मात्र है। अब भी मेरा यह दृढ विश्वास है कि ठाकुर साहब इस दुनियाँ मे नहीं रहे।

मन्त्रीजी ठकुराईन के जिद्दी स्वभाव से परिचित थे, इसलिए कुछ न बोले और मन ही मन यह समझ कर सन्तोष माना कि कल शाम को जब स्वयं ठाकुर साहब यहाँ पधारेंगे, तब दूध का दूध और पानी का पानी हो जायगा। सारा मामला अपने आप सुलझ जायगा।

आखिर यह दूसरा दिन भी बीत गया। तीसरे दिन अपने पूर्व निश्चय के अनुसार शाम को ठाकुर साहब लौट आये।

आते ही ठाकुराईन को सान्त्वना देने के लिए वे सबसे

पहले अपने अन्त पुर म गये। ठाकुराईन के विपूत चेहरे को और उदासीनता का दृश्य देख कर वे समझाने लग —"प्राण-प्यारी! अब यह रोना धोना छोड़ दो। देखो मैं जीवित हूँ। तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष खड़ा हूँ। कहीं भी मेरा बाल बाँका नहीं हुआ है। सपने की बातें सदा सच्ची नहीं हुआ करती। स्नान करो और फिर से वस्त्राभूषण धारण करो।"

ठाकुराईन ने कहा —"यह सब नकली बातें हैं। मेरे प्राण नाथ तो कभी के परलोक में प्रयाण कर चुके हैं। तुम कोई भूत हो, जो मेरा सतीत्व नष्ट करने के लिए ठाकुर साहब का स्वाँग भर कर आये हो किन्तु तुम्हारी यहाँ नहीं चलेगी। मैं इतनी भोली नहीं हूँ। मेरा सपना कभी झूठा नहीं हो सकता। चले जाओ यहाँ से!'

ठाकुर साहब न हर तरह से उसे समझाने की कोशिश की, किन्तु वह न मानी और पतिदेव के जीते जी रडापा भोगने लगी।

सपने का दृश्य जिस प्रकार क्षणिक होता है, जगत का दृश्य भी उसी प्रकार क्षणिक होता है। जो व्यक्ति इस क्षण भंगुरता के तत्त्व को हृदयंगम कर लेता है, वह संसार की मोह माया से मुक्त हो सकता है।

---

# ५—विचारकता

महानुभावो !

मानव जीवन मे भावों का बहुत अधिक महत्त्व है। भाव प्रत्येक मनुष्य मे होते है—किसी में अच्छे किसी मे बुरे। बुरे भाव मनुष्य को विनाश की ओर ले जाते हैं और भले भाव विकास की ओर। बुरे भाव विकार कहलाते है और भले भाव विचार।

भेद विज्ञान और क्षण भगुरता विचारों के ही प्रकार हैं, जो आत्मा के विचारों को नष्ट करने में सहायक बनते है।

विकार से मनुष्य उदरभर (पट्ठ) बनते है और विचार से विश्वभर। महापुरुष विश्वभर होते है। उनका हृदय अत्यन्त विशाल होता है। कहा है —

"अय निज परो वेत्ति
गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु
वसुधैव कुटुम्बकम्॥'

यह अपना है और यह पराया है—ऐसा सकुचित (तुच्छ) मनोवृत्ति वाले ही सोचा करते है। उदार चरित्रों के लिए (महात्माओं के लिए) तो सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब के समान होती है।

दानवता के सींग पूँछ नहीं होते, न रंग-आकार होते हैं। विकारों से ही मनुष्य दानव बन जाता है और विचारों से दानव भी मानव बन जाता है। विकारों ने मानव रावण को दानव बना दिया था और विचारों ने दानव वाल्मीकि को मानव क्या महर्षि बना दिया था।

विकार द्वेष पैदा करते हैं और विचार प्रेम। विकार नरक में ले जाता है और विचार स्वर्ग में। इसके लिए राजर्षि प्रसन्न चन्द्र का शास्त्रीय दृष्टान्त समझने योग्य है।

महाराज श्रेणिक अपने अन्तःपुर को तथा सभी राज कर्मचारियों को साथ लेकर एकबार भगवान् महावीर की वन्दना के लिए उद्यान में जा रहे थे। रास्ते में उनकी दृष्टि ध्यान मग्न राजर्षि प्रसन्न चन्द्र पर पड़ी। मन ही मन उनकी प्रशंसा करते हुए महाराज श्रेणिक भगवान महावीर के समीप जा पहुँचे।

पहुँचकर दर्शन किये। वन्दना की। यथास्थल बैठ गये। धर्म देशना सुनी। सुनने वाली परिषद् के विदा होते ही फिर से एकबार वन्दना करके भ० महावीर से उन्होंने पूछा —

"भगवन्! आज रास्ते में एक ओर मैंने राजर्षि प्रसन्न चन्द्र को ध्यान मुद्रा में देखा है। मैं जानना चाहता हूँ कि उनकी गति क्या होगी।

भगवान बोले— बुरी होगी राजन्! यदि इसी क्षण उनका देहान्त हो जाय तो वे सातवीं नरक में जायगे।"

श्रेणिक ने साश्चर्य पूछा —

"क्या फरमा रहे है भगवान् ! पहली नरक म !"

आश्चर्य में और भी वृद्धि करते हुए भगवान ने उत्तर दिया —

'नहीं, दूसरी नरक म।"

फिर उन दोनोंम इस प्रकार बात चीत हुई —

"क्या दूसरीम ?

"नहीं - नहीं, तीसरीम।"

'तीसरी नरकमें ?'

"नहीं राजन ! चौथी नरकमे।'

"मुझे कुछ समझमें नहीं आरहा है भगवन् ! क्या यह बात आप राजर्षि प्रसन्नचन्द्रके ही बारेमे कह रहे है ?'

"जी हाँ उन्हींके बारेमें। इस समय यदि उनके प्राण छूट जायँ तो वे पाँचवीं नरकमें जायगे।'

"क्या इतने प्रबल ध्यानका फल यही है कि उ ही ध्यानीको पाँचवी नरक मिले ?

"यह बात तो पुरानी होगई है राजन्। अब तो वे छठवीं नरकके योग्य ही कहे जा सकते हैं।'

"क्या छठवीं नरकके योग्य ?'

"नहीं-नहीं, अब तो वह समय भी बीत चुका है। इस समय यदि वे प्राण छोड़ें तो उन्हें केवल अन्तिम नरकमें— सातवी नरकमें ही स्थान मिल सकता है।'

उस दिन महाराज श्रेणिक को प्रभुके विचित्र उत्तर सुन कर जितना आश्चय हो रहा था, उतना उन्हें जीवन म पहले कभी

न हुआ था। राजर्षि प्रसन्न चन्द्र राजपाट छोड़ कर अकिंचन बने थे—तपस्वी बने थे—त्यागी बने थे—ध्यानी बने थे और इतने पर भी उनके लिए केवल सातवीं नरकमें ही स्थान हो अन्यत्र नहीं। इस बात पर उनका विश्वास नहीं हो रहा था, परन्तु केवल ज्ञानीके वचन भी तो अविश्वसनीय नहीं होते—अतथ्य नहीं होते। उनका अपना हृदय इस विषयमें कोई निर्णय नहीं कर पा रहा था। थोड़ी देर तक वे मौन बैठ रहे। उन्हें प्रश्न दुहरानेकी भी साहस नहीं हो रहा था फिर भी यह सोचकर कि आठवां नरक तो होती ही नहीं—किसी तरह साहस बटोर कर धीरसे पूछा —'भगवन्! क्या ध्यानका फल नरक होता है?"

भगवानने धीर गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया —"राजन्! ध्यान का फल नरक भी होता है स्वर्ग भी होता है और मोक्ष भी।'

"सो कैसे?

ध्यान चार प्रकारका होता है—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। प्रारम्भिक दो ध्यान नरकमें ले जाने वाले हैं और अन्तिम दो स्वर्ग मोक्षमें। राजर्षि प्रसन्नचन्द्र आर्त्त रौद्र ध्यानमें रमण कर रहे थे और उनके भाव क्रमशः कालुष्यकी चरम सीमा पर पहुँच गये थे, इसीलिए मैंने उन्हें सप्तम नरकगामी बतलाया था, पर तु अब उनकी [illegible] नट

[illegible] उनकी आत्मा उज्ज्वलमें [illegible]

रही है। यदि इस समय उनका देहान्त हो जाय तो वे सर्वार्थ सिद्ध नामक पाँचवें अनुत्तर विमानमें पैदा होंगे।

भगवानके द्वारा किये गये इस स्पष्टीकरणको सुन कर महाराज की जानमें जान आ गई, फिर भी अपनी जिज्ञासा को वे रोक न सके। पूछा — भन्ते! साधु बननेके बाद आर्त-रौद्र ध्यान का अवसर राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को कैसे मिल सका होगा ?"

भगवान् बोले —"राजन! जब आप प्रवचन सुननेके लिए इधर आ रहे थे तभी आपके दो राजकर्मचारी इस तरह बातें करते हुए राजर्षिके निकटसे हो कर गुजरे। पहलेने कहा कि धन्य है, राजर्षिको जिन्होंने आत्मकल्याण की साधनाके लिए राजसिंहासनको खुशी खुशी त्याग कर दिया। इस पर दूसरेने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा कि यह कौन सा बड़ा काम कर डाला! छोटे-से अनुभवहीन राजपुत्रको गद्दी सम्हला दी और शत्रुओंने जब यह बात सुनी तो तुरन्त उस राज्य पर चढ़ाई कर दी। घन-घोर युद्ध ठना हुआ है वहाँ। यद्यपि सैनिक प्राणपणसे जूझ रहे हैं, परन्तु विजय अनिश्चित है और ये हैं कि आत्मकल्याण करनेमें लगे हैं—राज्यरक्षा जाये भाड़में! इन्हें उसकी क्या चिन्ता ?

यह सुनते ही राजर्षि द्वेष और क्रोधके वशीभूत होकर शत्रुओंसे मानसिक संग्राम करने लग गये। उनकी आत्मा कलुषित हो गई और क्रमशः उसकी कालिमा बढ़ती गई और

इसी अनुपातमें आर्त रौद्र ध्यानके द्वारा वे पहली, दूसरी, तीसरी आदि नरकमें जाने की योग्यता प्राप्त करते हुए सातवीं नरकमें ले जाने वाले कर्मदलोंका संग्रह तक कर बैठे।'

महाराज श्रेणिक —"भन्ते! यह बात तो समझमें आ गई, परन्तु उनकी विचारधाराने पलटा कैसे खाया? सो भी बता दीजिये, जिससे कि मेरी जिज्ञासा पूरी तरह शान्त हो जाय।'

भगवान् बोले —"शत्रुओं से मन ही मन संग्राम करते हुए राजर्षिने जब देखा कि अपने पास कोई शस्त्रास्त्र शेष नहीं रह पाया है, तब क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने मस्तक पर रखे हुए सोनेके मुकुटको ही शस्त्रकी तरह प्रयुक्त करनेका निश्चय किया। अपने इस निश्चयके अनुसार ज्यों ही उन्होंने अपने मस्तक पर हाथ रखा, त्यों ही उन्हें भान हुआ कि मैं राजा नहीं, एक प्रव्रजित साधु हूँ। मेरे सिर पर मुकुट तो क्या, केश भी नहीं है। यह संग्रामस्थल नहीं, तपोवन है। न जाने किस मोह मायाके चक्कर मे पड कर मैं प्रभुस्मरण की जगह शत्रुस्मरण करने लगा। हाय! हाय!! मरणके बाद न जाने अब मेरी कौन सी गति होगी। इस तरह पश्चात्तापकी अग्निमें जलते हुए उनके कर्मदल क्रमशः क्षीण होने लगे। उनकी आत्मा शुद्धसे शुद्धतर होने लगी।"

भगवान् ऐसा समझा ही रहे थे कि दूरसे देव दुन्दुभिकी ध्वनि सुनाई पडी। उसे सुनते हुए वे बोले —"राजन्!

दखिये। प्रसन्नचन्द्र की आत्मा अब पूर्ण चन्द्रकी तरह प्रसन्न और उज्ज्वलतम हो गई है। शुक्ल ध्यानकी चरम सीमा पर पहुँच कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो मोक्षका सर्टिफिकेट है। जिसे केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उसे उसी भवमें आयुष्यके पूर्ण होते ही मोक्षलक्ष्मी वरण कर लेती है। राजर्षिके केवल ज्ञान की खुशी में ही देवगण दुन्दुभि बजा रहे हैं जिसकी गम्भीर मधुर ध्वनि यहाँ तक सुनाई पड रही है।"

कहनेका आशय यह है कि विकारोंकी शक्ति जितनी प्रबल होती है, विचारोंकी शक्ति भी उतनी ही प्रबल होती है। अब तक विकारोंके चक्करमें पड़ कर आप और हम सब चौरासी लाख जीव योनियोंमें भटकते रहे हैं—जन्म, जरा, मृत्यु प्राप्त करते रहे हैं, परन्तु अब हमने मानवयोनि प्राप्त की है, तो हमे इससे पूरा लाभ उठा लेना चाहिये।

मानव-योनि म रह कर मनुष्य राजर्षि प्रसन्नचन्द्र जी की तरह सातवीं नरकमे भी जानेकी योजना बना सकता है और मोक्षमे जानेकी तैयारी भी कर सकता है। विनाश भी कर सकता है—अपनी आत्मा का और विकास भी। ये दोनों मार्ग हमारे सामने है। हम दोनों मार्ग पर चलनेकी शक्ति रखते हैं। शास्त्रकार कहते है —

'जे कम्मे सूरा
ते धम्मे सूरा॥'

जो धर्म करनेमें प्रबल पराक्रम दिखा सकते हैं, वे धर्मक्षेत्रमें भी प्रबल पराक्रम दिखा सकते हैं। एक रास्ता विनाशका है और दूसरा विकासका।

यह तो निश्चित है कि हम दोनों मार्गों पर एक साथ नहीं चल सकते। चलनेके लिए हमें कोई एक ही मार्ग चुनना होगा।

मैं समझता हूँ, विनाशका मार्ग अपनानेको कोई तैयार न होगा। सभी विकासका मार्ग ही पसन्द करेंगे, किन्तु केवल पसन्द करनेसे काम न चलेगा। उस पर हमें चलना भी पड़ेगा। क्या आप सब लोग उस पथ पर चलनेके लिये तैयार हैं? यदि 'हैं" तो फिर विकार छोड़िये—विचार अपनाइये। विचारकतासे ही आत्माका उद्धार हो सकता है।



# ६—सदाचार

आचारनिष्ठो !

दुनिया भर के सभी धर्म शास्त्र एक तरहके आचारशास्त्र हैं। आचार धर्मका मुख्य अंग है। जैनोंके पैंतालीस आगम अथवा बत्तीस सूत्रोंमें सबसे पहला 'आचारांगसूत्र' है। हिन्दुओंके शास्त्र कहते हैं —

"आचारः प्रथमो धर्मः ॥"

आचार ही सबसे पहला धर्म है। आचार मानवताकी पहली शर्त है। मनुष्य कितना भी विद्वान हो—बुद्धिमान हो—सम्पत्तिवान् हो, परन्तु यदि वह आचारवान् नहीं है, तो जगत्में प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। यों तो करोड़ों मनुष्य दुनियामें पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं, परन्तु दुनिया केवल उन्हींको पहिचान पाती है, जिनका जीवन सदाचारी होता है।

यदि यह कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति न होगी कि आचार ही वास्तविक जीवन है। एक शायरने कहा है —

हँसके दुनियामें मरा,
कोई कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर
उसने जो कुछ होके मरा ॥

भला न किया जाय तो क्या पशु पक्षी अन्न कर भलाई की जायगी ?

कहते है, भारतवर्षमें कभी ऐसा भी समय रहा है, जब यहाँ सेवाके साधन खूब थे, पर सेवाके क्षेत्र नहीं थे। आज वैसा नहीं है। देशमे गरीबी, भुखमरी बेकारी, बीमारी आदिका आज बोलबाला है। इस प्रकार परोपकारका क्षेत्र पद पद पर दिखाई देता है। सेवाके साधन भी काफी हैं। हमें इन दोनोंका मेल बिठाना है। माध्यमे लिए पूरी शक्तिके साथ साधनों का उपयोग करना है।

महर्षि व्यासने सभी शास्त्रों का सार परोपकार बताया है। जैसा कि किसीने कहा है —

'अष्टादश पुराणेषु,
व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकार पुण्याय,
पापाय परपीडनम् ॥'

जैन शास्त्रोंमें मित्रता पर खूब जोर दिया गया है। इसका क्षेत्र मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रखा गया, प्राणिमात्रसे मित्रता करने की प्रेरणा की गई है —

"मित्ती में सव्वभूएसु ॥"

इसी सूक्तिके भाव हिन्दीकी एक कवितामें भी प्रकट हुए है —

"मैत्री भाव जगतमें मेरा,
सब जीवोंसे नित्य रहे ॥

हमारी किसके प्रति कितनी मित्रता है, यह जाननेकी कसौटी परोपकार ही है। हम यदि संकट में अपने मित्रकी सहायता न करें तो हमारी मित्रता कैसी ? सहानुभूति सेवा और सहयोग के द्वारा ही मित्रता हमेशा प्रकट की जाती है।

यदि हमारे हृदयमें मित्रता का अमृत भरा है, तो हम कभी किसीको धोखा नहीं दे सकते—दुकान पर बैठ कर झूठे माप तौल नहीं कर सकते—झूठ बोलकर दूसरोंको ठग नहीं सकते—किसीकी अमानत हजम नहीं कर सकते—किसीके साथ कभी विश्वासघात नहीं कर सकते—किसी की चोरी नहीं कर सकते—किसी को फिजूल कष्ट नहीं दे सकते। मतलब यह कि हम सारी बुराइयोंसे बच सकते हैं और सारी भलाइयोंको जीवनमें उतार सकते हैं। मित्रता ही वह माध्यम है जो हम दुराचारसे सदाचार तक ले जाता है।

मन्त्री या न्यायाधीश की कुर्सी पर वही बैठ सकता है, जिसमें उस पदके कर्त्तव्य निभानेकी योग्यता हो। जो व्यक्ति अयोग्य सिद्ध होता है, उसे उस कुर्सीसे तुरन्त अलग कर दिया जाता है। मानव शरीर भी एक कुर्सी है जिस का अवलम्बन लेने वालेमें मानवताका—परोपकारका—मित्रताका अस्तित्व अनिवार्य है। मानव शरीर पाकर भी जो व्यक्ति मानवीय कर्त्तव्य नहीं निभाता उसे अगले जन्ममें योनि बदलनी पड़ेगी—तिर्यञ्च गति या पापोंकी प्रबलता हुई तो नरक गति अपनानी पड़ेगी। इसलिए मानवीय कर्त्तव्योंका पालन सदा तत्परता पूर्वक कीजिये।

मिट्टीमें सोना छिपा हो, तब तक वह मिट्टीके ही भाव बिकेगा। मिट्टीसे अलग करने पर ही उसका असली मूल्य मिल सकेगा। बुद्धिमानी यही है कि मिट्टीसे सोना अलग कर लिया जाय। हमारा तन, मन, धन और जीवन भी क्षण भगुर होनेसे तुच्छ है—मिट्टी है। परोपकार ही इस मिट्टीम छिपा सोना है। जैसा कि किसी नीतिकारने कहा है —

"परोपकरण काया—
दसारात्सारमाहरेत् ॥'

इस असार शरीरसे परोपकार रूपी सार निकाल लेना चाहिये। तन मन धनकी मिट्टीमेंसे परोपकार रूपी सोना निकाल लेना चाहिये। मतलब यह कि इन सब का उपयोग हम परोपकारके मार्ग मे करते रहना चाहिये। यही धर्म है। जैसा कि रामचरित मानसमें कहा है —

"परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥'

परोपकारके समान दुनियामे कोई धर्म नहीं है और पर-पीड़ा ( दूसरोंको दुख पहुँचाना ) के समान कोई पाप नहीं है।

यदि हमारा जीवन आहार, निद्रा, भय और मैथुनमे ही बीत जाय तो पशुओंसे हममे कोई अन्तर नहीं रहेगा। धर्म ही है, जो हमे पशुओंसे पृथक करता है। संस्कृतके एक कविने ठीक ही कहा है —

आहार-निद्रा भय मैथनञ्च
मसामान्य मेतत्पशुभिनराणा

सहानुभूति का पवित्र दद जगाती रहेगी, जिससे कि आपको परोपकारकी प्रेरणा मिलती रहे।

यदि आप धनवान हैं, तो अपने धनके द्वारा वृद्धों, विकलांगों और अनाथ छात्रों को सहायता कीजिये—यदि आप मनस्वी हैं, तो विश्वकी उलझी हुई समस्याओं पर चिन्तन करके लोगोंको बता दीजिये कि वे किस प्रकार सुलझाई जा सकती हैं—यदि आपका शरीर शक्तिशाली है, तो उसके द्वारा दुष्टों और दुश्मनों से अपने गाँवकी, प्रान्तकी और राष्ट्रकी रक्षा कीजिये—यदि आप बुद्धिमान् हैं तो लोगोंको उचित सलाह दीजिये।

व्यापारी लोग अपने बही खाते काली स्याहीसे लिखते हैं। यह स्याही ऐसी होती है कि जल्दी नहीं सूखती। इसके लिए एक अलग छेद वाली दवातमें रखी हुई रेतीका प्रयोग करते हैं। रेती जब स्याही को सोख लेती है, तब उसे फिर से उसी दवातमें डाल देते हैं।

इस प्रक्रियामें पूरी सावधानी रखी जाती है कि कभी कहीं रेती का एक कण भी इधर-उधर गिर न पड़े, जिससे कि रेतीके प्रत्येक कणका उपयोग हो सके।

क्या मैं पूछ सकती हूँ कि रेतीके कण बचाने के लिए जितनी सावधानी रखी जाती है, जीवनके क्षण बचानके लिए उतनी सावधानी क्यों नहीं रखी जाती? रेती के कणोंका मूल्य अधिक है या जीवनके क्षणोंका?

यदि हम मानते हैं कि जीवन के क्षण ही अधिक मूल्यवान् हैं, तो हमें रत्तीके प्रत्येक कणकी तरह जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करना चाहिये।

सदुपयोग का अर्थ है—सत्कार्य मे उपयोग। कोई विवाहित युवक मर जाय तो उसके परिवार वालों को सान्त्वना देने जाना भी एक सत्कार्य है, किन्तु यह सत्कार्य आज एक रूढ़ि बनकर किस तरह दुष्कार्यम बदल गया है? देखिये।

यदि कोई पचीस वर्ष का नव युवक चल बसा हो तो समाचार सुनते ही दूर दूरके लोग उसके घर पर "बैठने" (सहानुभूति प्रगट करने) के बहाने आते हैं और लड्डू उड़ानेमें भिड़ जाते हैं। किसी कविने ठीक ही कहा है —

"मूँछें ऊँची कर करके वे
बाँह चढ़ा कर खाते हैं।
नहीं समझमें आती,
उनको लड्डू कैसे भाते हैं॥

इधर घरमें कुहराम मचा है—पत्नी आँसू बहा रही है—माँ रो रही है—बाप विलाप कर रहा है—बच्चे चिल्ला रहे हैं—बहिन बिलख रही है—भाई कराह रहे है और एक आप हैं, जो मुक्ती निगल रहे हैं—लड्डुओं पर हाथ साफ कर रहे हैं। उस श्मशानकी सी भयंकर मनहूस परिस्थितिमे आपको जीभको स्वाद कैसे आ सकता है? लड्डू गलेके नीचे उतरते

मैं पूछना चाहती हूँ कि आपकी क्या यही धार्मिकता है—क्या यही सहानुभूति है—क्या यही कर्त्तव्यपरायणता है—क्या यही सहयोग है—क्या इसीका नाम सान्त्वना है। इस विषयमें बूढ़ोंकी तो बात ही क्या ? अच्छे पढ़ लिखे लोग भी मूर्ख साबित होते हैं—उनके भी दिमाग से कुरूढ़ियोंका कूड़ा-कचरा निकल नहीं पाता।

इस किरियावर या मौसर की रस्म अदा करने के लिए बहुत से दुखी परिवारों का गरीबी के कारण अपना टूटा-फूटा मकान तक गिरवी रख देना पड़ता है और इस तरह रंज के दुख के साथ ही कर्ज का दुख भी वहन करना पड़ता है।

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि आप उस दुखी परिवार के घर पर सहानुभूति प्रकट करने जाना बन्द कर दें। जाने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु माल मत खाइये। यदि आप लड्डू खाने से इन्कार कर देंगे तो वे जबरदस्ती आपके मुँह में ठूँसेंगे नहीं। हाँ, यदि आप दूसरे गाँव से आये हैं तो घर वाले आपको भूखा भी नहीं रहने देंगे। ऐसी परिस्थिति में घरवाले जैसे सादा भोजन करते हैं, वैसे आप भी सादा भोजन ही कीजिये—मिठाई को मत छूइये।

घरवाले भी दिल से मिठाई नहीं बनवाते, क्योंकि वह कोई खुशी का अवसर नहीं होता। वे नुक्ता करते हैं इसलिए कि समाज उसे चाहता है—अथवा इस डर से कि न करने पर नाराज होकर समाज कहीं हमारे परिवार का बहिष्कार न कर दे।

आँसू बहाने वालों के आँसू पोंछने का और उन्हें धीरज देने का दायित्व आपका होता है। उस विधवा बहिन के घर पर आपको भाई बनकर ही जाना है, दुश्मन बन कर नहीं।

मेरा ख्याल है कि यदि किसी पच की जीभ न लड्डू के लिए लार न टपके—यदि सभी लोग सच्चे दिल से लड्डू के प्रति नफरत करने लगें—यदि ऐसे प्रसंग पर कोई भी नुक्ता खाने को तैयार न हो तो यह कुप्रथा तुरन्त खत्म हो जाय। यदि कोई खाने वाला न रहेगा तो कोई नुक्ता करेगा ही क्यों ?

यह तो एक उदाहरण मात्र है। न जाने ऐसी समाज में कितनी कुप्रथाएं चल रही होंगी, जिनका मूल रूप अच्छा था, परन्तु कालान्तर में विकृत हो जाने से आज उन्हें छोड़ना या बदल देना ही परम कर्त्तव्य हो गया है।

अच्छे साहित्य का स्वाध्याय भी हमारा कर्त्तव्य है। अपना चरित्र पवित्र बनाने के लिए हमें महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ने चाहिये।

महाजनो येन गतः स पन्था ॥

अपना सही मार्ग क्या है ? वही, जिस पर से महापुरुष गये हैं। अपने जीवन को उनके जीवन से मिलाते रहिये। इससे अपने दोषों की जानकारी होगी।

आप दर्पण में अपना मुँह देखते हैं। यदि वहीं क।

महापुरुषों का जीवन चरित्र भी एक दर्पण है, जिसकी ओर देखने से हमें अपने जीवन के विकार, कलङ्क दोष साफ साफ दीख पड़ेंगे। उस परिस्थिति में हमारा कर्त्तव्य हो जायगा कि हम ज्ञान रूपी तौलिये को भावना के जल में भिगोकर उससे अपने जीवन के दुर्गुण रूपी दाग मिटा डालें।

उपकारी का उपकार किया तो कोई बड़ी बात नहीं हुई। महापुरुष तो अपकारियोंका भी उपकार करते हैं। वे कहते हैं -

जो तो कूँ काँटा बुए,
ताहि बोय तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है,
वाको है तिरसूल॥

यदि तुम भलाई करोगे तो तुम्हें उसका फल भला ही मिलेगा। बुरा फल मिलेगा उसे जिसने बुराई की है। कुदरत के घर में अंधेर नहीं होता—निष्पक्ष न्याय होता है।

वीर बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि महापुरुषों के कोरे नाम स्मरण से कुछ न होगा। हमें चाहिये कि उनके पवित्र चरित्रों का स्मरण करें और उनके पद-चिन्हों पर चलने की कोशिश करें।

एक दीपक की लौ से हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार एक महामानवका चरित्र हजारों महामानव पैदा कर सकता है। जरूरत है—दीपक से दीपक का संयोग करने की। अपनी आत्मा को परमात्मा की ओर उन्मुख करने की।

स्वाध्याय दो प्रकार का होता है—आँखों से और अन्तस्तल से। यदि आप महापुरुषों के छपे हुए जीवन चरित्र केवल आँखों से पढ़ेंगे तो आपको पढ़ने का अभ्यास मात्र होगा और अन्तस्तल से पढ़ेंगे—तन्मय होकर पढ़ेंगे तो आपको बढ़ने का अभ्यास होगा—आगे बढ़ने का अभ्यास होगा—विकास के मार्ग पर चलने का अभ्यास होगा।

स्वाध्यायका एक दूसरा भी अर्थ होता है—स्व ( आत्मा ) का अध्ययन। अब तक आपने स्कूलों में—कालेजों में इतिहास, भूगोल, गणित और भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया है—जड़ पदार्थों का रहस्य समझा है—बाहर ही बाहर देखा है और दूसरों के बारे में ही जानकारी हासिल की है, परन्तु अब जरा आत्मा का अध्ययन कीजिए—आत्मा का इतिहास सोचिए कि वह कहाँ से आई है और कहाँ जानेवाली है—भीतर झाँकिये—अपनी मनोवृत्तियों का अध्ययन कीजिए और अपने बारे में जानकारी हासिल कीजिए। सोचिए कि आपका लक्ष्य क्या है—आप कहाँ खड़े हैं और आपको कितनी मंजिलें पार करके कहाँ जाना है—कहाँ पहुँचना है।

बहुत से लोग अमुक तरह के क्रियाकाण्ड तो नियमित करते हैं, पर अपना जीवन नहीं सुधारते। कविवर बिहारी लाल ने ऐसे ही लोगों का विचार करते हुए कहा है —

मन काँचै नाचै वृथा
साँचै राचै राम॥"

—विहारी सतसई

जब तक मन कच्चा है तब तक सारी दौड़ धूप व्यथ है। मन सच्चा हो तभी राम प्रसन्न होते हैं। जीवन भर झाड़ हाथ में रखो, पर काम में नहीं लाये उसे तो कमरा साफ नहीं होगा। कचरा निकालने के लिए झाड़ू लगानी पड़गी। पूर्वभवों से लेकर इस भव तक थानक थान फाड दिये होंगे और हजारों-लाखों मुंहपत्तियाँ हाथ मे ले लेकर या मुँहपर बाँध बाँध कर खादी होंगी पर अबतक सामायिक नहीं आई-समभाव नही आया—मन शुद्ध नहीं हुआ।

पिछले अनन्त भवों से मालाएँ फिराते आ रहे हैं, परन्तु अब तक मनको नहीं फिराया—उसे वश मे नहीं किया तो क्या लाभ हुआ! कबीर साहब कह रहे हैं —

"माला फेरत जुग गया
मिटा न मनका फेर।
करका मनका डारि दे
मनका मनका फेर॥"

माला फिराने में कोई हर्ज नहीं है, परन्तु उसके साथ साथ हम अपना मन भी ससार के विषयों से फिराना होगा, उसे परमात्मा में लगाना होगा। महापुरुषों ने जो कुछ किया—जो कुछ कहा, वैसाही करना होगा। मिठाई का नाम अपने से

नहीं उसे खाने से ही पेट भरेगा। ठीक उसी प्रकार महा पुरुषों के स्मरण मात्र से नहीं उनके जीवन का अनुसरण करने से ही आत्म कल्याण होगा। सदाचार से ही उद्धार होगा।

मन्दिर या स्थान में, मस्जिद या गिरजा घर में ही नहीं, अपने घर और बाजार में भी सदाचार साथ रखिये।

सदाचार का अर्थ है—सन्तों का आचार—सत्पुरुषों का व्यवहार—सज्जनों का कार्य। यदि जीवन में सदाचार की सुगन्ध भर जाय, तो आज ही आपका जीवन आकर्षक हो जाय—दूसरों के लिए अनुकरणीय आदर्श बन जाय।

क्या मैं आशा कर सकती हूँ कि आज से ही आप अपने जीवन में सदाचार को उतारने का प्रयास प्रारम्भ कर देंगे?



# ७—अनासक्ति

वीतरागानुयायियो !

बड़े भारी पुण्य प्रतापसे ही कभी किसी जन्ममें वीतरागकी वाणी सुनने का स्वर्णावसर प्राप्त होता है। सुनने से क्या लाभ होता है ? इसका उत्तर शास्त्रकारोंने इन शब्दोंमें दिया है —

'सोच्चा जाणइ कल्लाण
सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयपि जाणइ सोच्चा,
जं सेयं तं समायरे॥'

—दशवैकालिक ४-११

सुनकर ही मनुष्य जान सकता है कि धर्म क्या है और पाप क्या है। धर्म और पापका रहस्य समझ कर इन दोनोंमें से जो अच्छा हो—कल्याण करने वाला हो, उसे अपना लेना चाहिये।

मनुष्य पाप क्यों करता है ? राग द्वेषके कारण। द्वेष तो बुरा है ही—कड़वा भी है, परन्तु राग मीठा होकर भी बुरा है, इसलिए वह द्वेषसे भी अधिक भयंकर है। अरिहन्त देवको इसीलिए 'वीत राग' कहा जाता है, (वीतद्वेष नहीं) कि उन्होंने मीठे रागकी भयंकरता को पहिचानकर उस पर विजय प्राप्त कर ली थी। रागका त्याग कर दिया था।

राग छूटने पर द्वेष तो अपने आप छूट जाता है। द्वेष होता है इसलिए है कि हम किसी पर राग रखते हैं। यदि आपका एक पुत्र कमाऊ हो और दूसरा लड़ाकू तो आपका एक के प्रति राग होगा और दूसरे के प्रति द्वेष। यदि आप पहलेके प्रति राग न रखें तो दूसरेके प्रति द्वेष भी न रहेगा। दोनों पुत्रोंके प्रति समभाव रहेगा।

रागके हो ममता, मोह, रति आसक्ति आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। इनसे दूर रहना अनासक्ति है।

आसक्ति छूटती है—सम्यक्त्व से—विवेक से। अजीवको जीव समझना मिथ्यात्व है। जीवको अजीव समझना भी मिथ्यात्व है। जीव को जीव और अजीवको अजीव समझना सम्यक्त्व है। जड़को जड़ और चेतनको चेतन समझना विवेक है। स्वर्गमें देवोंके रत्नजटित विमान भी जड़ होनेसे मिट्टीकी तरह तुच्छ हैं और अमीबा (वैज्ञानिकोंकी मान्यतानुसार एक रूपका सबसे छोटा प्राणी) जैसे प्राणी भी सचेतन होनेसे आदरणीय हैं। सहृदय मनुष्य अमीबाको भी कष्ट नहीं देना चाहेगा और दूसरी तरफ रत्नजटित विमानोंको भी परवाह नहीं करेगा।

जड़ पदार्थोंको महत्वपूर्ण समझकर अविवेकी-व्यक्ति ममता का जाल फैलाता है और मकड़ी की त

र ... समय भी वह ...

ने ... करके यह ...

आज यह सब यहां छूट रही है। इच्छा न होते हुए भी इसे छोडकर मुझ जाना पड रहा है। विवेकी मनुष्य मृत्यु शय्यापर भी यही सोचेगा कि सब पुद्गल ही पुद्गल है। इनमें से एक अणु भी मेरा नहीं है। म इस दुनियामें अकेला आया था और अकेला ही जा रहा हूँ। बताइये ऐसे व्यक्ति को दु:ख क्यों होगा ?

रोटीके टुकडके लिए कुत्ते ही लड़ते है। यदि मनुष्य भी किसी जड़ पदार्थकी प्राप्तिके लिए सघर्ष करें तो कुत्तोंसे उनमें फर्क ही क्या रहे ?

आज विज्ञानने अणुओंकी शक्ति का पता लगा लिया है। वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक अणुमें सूर्यके समान प्रचण्ड शक्ति भरी पडी है, तो क्या आत्मामें कोई कम शक्ति है? यदि वैज्ञानिकोंके शरीरमें आत्मा न होती तो अपने मुर्दे शरीरसे क्या इस तथ्यकी खोज वे कर सकते थे? कभी नहीं। इसलिए मानना चाहिये कि यदि एक अणु में सूर्यके समान शक्ति है, तो आत्मामें अनन्त सूर्योके बराबर शक्ति है! तभी तो आत्मा अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन,अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्यको धारण करने वाली मानी जाती है।

यदि कहीं कोई चमकीला पुराना पत्थर मिल जाय तो उस पर पुरातत्त्ववेत्ता लट्टू हो जाते हैं। एड़ीसे चोटी तक पसीना बहा कर उसका इतिहास खोजते हैं। उस पर दुनिया-भरके पत्रोंमें लेख छपते हैं। मैं पूछती हूँ कि क्या उस पत्थरसे भी

आत्मतत्त्वका महत्त्व कम है ? यदि नहीं, तो फिर क्यों आत्मा का इतिहास न खोजा जाय ? आप अपनी आत्माको देखें मैं अपनी आत्माको देखूं ।' इसमसे प्रत्येक व्यक्तिको सामा यिकमें बैठ कर दो घड़ी तक यह चिन्तन करना है कि मैं कौन हूँ—मेरा स्वरूप क्या है—मैं क्या कर सकता हूँ—क्या कर चुका हूँ—क्या कर रहा हूँ और मुझे क्या करना है ! कहाँसे आया हू और मुझे कहाँ जाना है ! आदि।

जैसे हम मिट्टीके मकानमें रहते हैं वैसे ही इस शरीर रूपी मकानमें हमारी आत्मा रहती है। किरायेके मकानमें किरायेदारको कोइ आसक्ति नहीं रहती। सरकारी कर्मचारियोंके तबादले होते रहते हैं। उन्हें हमेशा एक गाँव छोड़ कर दूसरे गाँवमें—एक मकान छोड़ कर दूसरे मकानमें जानेके लिए तैयार रहना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार हमे भी एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करनेके लिए सदा तयार रहना चाहिये। इसमे रोना धोना क्या ? यदि इस तरह शरीर के प्रति अनासक्ति पैदा हो जाय तो हमें मृत्युका कोइ भय न रहे। गीतामें एक श्लोक है —

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥"

जैसे मनुष्य फटे पुराने कपड़ोंको छोड कर नये दूसरे ... ही यह देही ( देहमें रहने वाली

है, त्यों त्यों आत्मा का ज्ञान प्रकट होने लगता है। चार घन-घाती कर्मों के नष्ट होते ही अन्तिम ज्ञान कैवल्य (केवल ज्ञान) प्राप्त हो जाता है। जिसे केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है अर्थात् जिसकी आत्मासे कैवल्यकी ज्योति प्रकट हो जाती है, उसकी उसी भवमें मुक्ति निश्चित हो जाती है। अन्तिम चार कर्मोंके क्षय होने तक ही उसे संसारमें रहना पड़ता है, फिर वह आत्मा सर्वथा मुक्त हो जाती है।

मतलब यह कि ज्ञानसे मोक्ष, निर्वाण, वैकुण्ठ, ईश्वर-प्राप्ति आदि सब कुछ प्राप्त हो सकता है। हिन्दुओंके शास्त्र भी यही कहते हैं —

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॥"

ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती— आसक्तिसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

ज्ञानका उपयोग दूसरों के दोष ढूँढने में—छिद्रान्वेषण करने में मत कीजिए। आत्मनिरीक्षण में कीजिये। एक मेवाड़ी सन्त के ये वचन याद रखिये —

वो आछाने वो ओछा तो
यी भोगेगा वारो।
वो यूँ कीदो वो यूं कीधो
ये कई कीधो थारो?
कर कर वृथा अन्थ दूँजा रो।
वेंडा वगत गमायो सारो॥

—डा० चतुर सिंह

साधु साध्वियों से कोई भूल हो जाय तो आप लोग निन्दा करने लगते हैं, पर ऐसा नहीं सोचते कि वे भी समाज के ही अंग है— समाज में ही पैदा होकर पनपे हैं और साधुवेष धारण किया है। सिर्फ वेष बदलने से ही तो सारे दोष तुरन्त दूर न हो जायेंगे। धीरे धीरे ही सुधार होगा। आप मधुर शब्दों में उन्हें समझाइये तो वे जरूर मान जायगे और उन भूलों से भविष्य में बचने का प्रयत्न करेंगे। निन्दा करने से कोई सुधार न होगा बल्कि उसकी प्रतिक्रिया होगी। इससे अच्छा तो यही होगा कि आप आत्म निरीक्षण करके अपने दोषों को ही दूर करें। ज्ञानका ठीक उपयोग यही है। हाँ, स्वयं सुधर कर आप दूसरों को सुधरने की सलाह दे सकते हैं।

अन्तिम ज्ञान प्राप्त करने वाले महापुरुष कुछ भी छिपा कर नहीं रखते। वे अपना सारा ज्ञान दुनिया में बिखेर देते हैं। व्यापारी दान में धन दे देता है, पर धन कमाने के तरीके या अनुभव दूसरों को नहीं बताता। महापुरुष निःस्वार्थ होते हैं, इसलिये उनके हृदय में ऐसी संकुचित मनोवृत्ति नहीं होती। वे अत्यन्त उदार होते हैं। वे ज्ञान-प्राप्ति के तरीके भी बता देते हैं।

यदि हम जानते हैं कि जड़ की अपेक्षा चेतन का महत्व अधिक है तो हम इस जड़ संसार में डूबना नहीं तैरना चाहिये। जहाज डूबता नहीं, तैरता है, इसीलिए वह दूसरों को भी तिराने में समर्थ बनता है। जहाज पानी में रहकर भी पानी के ऊपर रहता है। तीर्थंकरों की उपमा जहाज से दी जाती है।

वे ससार म रहकर भी ससार के ऊपर थे। सांसारिक विषय भोगों से सर्वथा अनासक्त रहते थे। इस प्रकार स्वयं तैरनेवाले बनकर दूसरों को भी तिरानेवाले बन गये थे। उनके स्तोत्र में इन्द्र ने कहा था —

"तिन्नाण तारयाणं। बुद्धाण बोहयाणं। मुत्ताण मोअगाणं॥"

हे भगवन्! आप तीर्ण हैं और तारक भी। बुद्ध हैं और बोधक भी। मुक्त हैं और मोचक भी।

जो लोग सजा पाने वाले हैं—अपराधी हैं, वे दूसरों की सजा माफ नहीं करा सकते। जो लोग स्वय बीड़ी सिगरेट पीते हैं, वे दूसरों को बीड़ी सिगरेट छोड़ने का उपदेश नहीं दे सकते। यदि ऐसे लोगों ने उपदेश दिया भी तो उसका श्रोताओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए दूसरों को बदलनेके पहले हमे अपने आपको बदलना होगा। बड़े बड़े महापुरुषों ने ऐसा ही किया था। महात्मा गाँधीकी वाणीका असर सुनने वालों पर खूब होता था, क्योंकि वे जो कुछ कहते थे उसे पहले अपने जीवनमें उतार लेते थे। हमे भी ऐसा ही करना है।

भोगोंकी आसक्तिके कारण कर्त्तव्य नहीं सूझता। हमे ससारमे रहकर भी भोगोंसे अनासक्त रहनेका अभ्यास करना है। कैसे? तीन दृष्टान्तोंसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

(१) नारियल —यह दो प्रकारका होता है—पानीवाला और सूखा। गिरी दोनोंमें है, परन्तु पानीवालेमें चिपकी रहता है और सूखे नारियलमें वह चिपकी नहीं रहती। काय है स गिरी को चिपकाने वाली वस्तु क्या है ? गिरीका गीलापन। संसारमें भी ममताका गीलापन हमारी आत्माको वसमें चिपकाय रखता है। ममता छोड़कर हम अनासक्त बन सकते हैं।

(२) वस्त्र —पहिननेके वस्त्र दो प्रकार के होते हैं। सूखे और चिकने (तेलकर)। सूखे वस्त्र पर धूल बैठता है तो झटकते ही गिर जाती है या उड़ जाती है परन्तु जो वस्त्र तेल से चिकना हो गया है उस पर बैठी हुई धूल झटकने से नहीं निकलती। संसार में भी मोह रूपी तेल से जो आत्मा में चिकनापन आ गया है वह आसक्ति का कारण है। अनासक्त बनने के लिए मोह का त्याग करना पड़ेगा।

(३) गोबर —यह भी दो प्रकार का होता है—गीला और सूखा। सूखे गोबर को कंडा भी कहते हैं। गीले गोबर को दीवार पर फेंका जाय तो वह चिपक जायगा परन्तु कंडा फेंका जाय तो नहीं चिपकेगा, बल्कि दीवार से टकराकर जमीन पर गिर पड़ेगा। आत्मा में भी जब [illegible] का गीलापन रहता है, तब वह संसार से चिपकी रहती है और वह गीलापन जब सूख जाता है, तब न [illegible] चिपकता। हम भी कंडे की तरह आ[illegible] सूखी या अनासक्त बनना है।

जो वस्त्र तैल की चिकनाई से रहित होता है, उस पर धूल नहीं आती—ऐसी बात नहीं है। धूल उस पर भी आती है, पर टिकती नहीं, झटकते ही निकल जाती है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की आत्मा पर सातवें नरक मे ले जाने की शक्ति रखनेवाली कर्मरज आई थी, परन्तु भावना का झटका लगते ही उड गई और उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।

राजर्षि पर जब इतनी प्रबलधूल आई थी उस समय उन्हें कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु केवल ज्ञानी अरिहन्तों को भी कर्मरज नहीं छोडती। तेरहवें गुण स्थान म पहुँच जाने पर भी ईर्यापथिकी क्रिया से उनकी आत्मा कलुषित होती रहती है, परन्तु वह कालुष्य एक समय मं आता है, दूसरे समय मे वेदना प्रदान करता है और तीसरे समय म नष्ट हो जाता है।

जैन शास्त्रों म "समय" काल का पर्यायवाची शब्द नहीं माना जाता। वह तो काल की सबसे छोटी इकाई मात्र है। काल का अविभाज्य छोटे में छोटा एक अश ही "समय' के नाम से पहिचाना जाता है।

समय की सूक्ष्मता समझने के लिए इस गणना पर ध्यान दीजिये —

१ युग=५ वर्ष
१ वर्ष=२ अयन
१ अयन=३ ऋतुएँ
१ ऋतु=२ मास
१ मास=२ पक्ष

मे कर लिया जाय तो अनासक्ति की साधना मे सफलता मिल सकती है।

हिन्दुओं के शास्त्र भी यही कहत हैं —

"मन एव मनुष्याणा,
कारण बन्धमोक्षयो ॥

मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है। मन ही भला या बुरा होता है इन्द्रियाँ भली बुरी नहीं होती।

एक आदमी चश्मा पहिन कर पर स्त्रियों पर बुरी नजर डालता है और दूसरा आदमी वही चश्मा पहिनकर धर्म शास्त्रों का स्वाध्याय करता है। पहला पापी है और दूसरा धर्मात्मा परन्तु चश्मा निर्दोष है, उसमें न पाप है और न धर्म। ठीक इसी प्रकार मन इन्द्रियों के माध्यम से अच्छे-बुरे काम करता रहता है इन्द्रियाँ निष्पाप हैं। सारा दोष मन का है। विषय-कषाय के विचार तथा सयोग वियोग या जन्म मृत्यु से होने वाले सुख दुख के द्वन्द्व मन में ही पैदा होते हैं। द्वन्द्व को मिटाने के लिए मन को वश में कीजिए—ससार में रहकर भी जल में कमल की तरह उससे निर्लिप्त रहने की कोशिश कीजिये।



# ८—संगठन का महत्त्व

गद्य आशय।

संसार में जो बड़ी बड़ी योजनाएँ बनाई जाती हैं—बड़ी बड़ी क्रान्तियाँ होती हैं—बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं उन सबके मूल में संघ या संगठन की शक्ति ही काम करती हुई नजर आती है।

यद्यपि प्रत्येक संगठन का सूत्रधार एक ही पुरुष होता है परन्तु वह अकेला कुछ नहीं कर सकता। वह तो केवल दिशा बता सकता है—रास्ता बता सकता है। चलने का काम संगठन का है। संगठन ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। चोर डाकू भी अपने कार्य संगठन के द्वारा ही सिद्ध करते हैं, तो फिर सज्जनों की तो बात ही क्या?

मनुष्य जिन हाथों से दीवाल चुनता है, उन्हीं से उसे ढाह भी सकता है। इसी प्रकार जो मनुष्य संगठन बनाते हैं वे उसे तोड़ भी सकते हैं। यदि संगठन का लक्ष्य बुरा है तो उसे तोड़ देना ही ठीक है और यदि अच्छे लक्ष्य से संगठन बनाया गया है, तो प्राणों की बाजी लगाकर भी उसकी रक्षा करनी चाहिये।

संगठन में मनुष्य तो अलग अलग रहते हैं, परन्तु उनमें फूट नहीं होती—सब मिलजुल कर रहते हैं—एक दूसरे के अनुकूल बनकर रहते हैं। ...

परन्तु उसकी शाखा-प्रशाखाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वे विभिन्न शाखा प्रशाखाएँ और टहनियाँ एक दूसरे मे मिली रहती ह और सब मिलकर पेड़ की शोभा बढ़ाती हैं। उनकी अपनी शोभा भी वृक्ष का अंग बनने म है। जो टहनी टूटकर जमीन पर गिर पड़ती है,उसकी क्या शोभा ? बालों की शोभा सिरमे है। जो बाल काट डाले गये ह —जमीन पर गिरे पड़े हैं, उनकी क्या शोभा ? दाँतों का शोभा मुँह मे है। जो दाँत अपनी पंक्ति से अलग हो जाता है उसकी क्या शोभा ? नाखूनों की शोभा उँगलियों के साथ रहने म है। जो नाखून काट डाले गये ह —उंगलियों का साथ छोड़कर जमीन पर बिखरे पड़े ह उनको कौन पूछता है ?

ठीक इसी प्रकार मनुष्यों की शोभा भी सगठनमें है। जो मनुष्य सगठनसे अलग हो गया है, उसकी क्या शोभा ? उसे दुनियाम कौन पूछता है ? कोई नहीं। संस्कृतमे यह ठीक ही कहा गया है —

"स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते
दन्ता केशा नखा नरा ॥"

अर्थात् स्थान भ्रष्ट होने पर दाँत, केश, नाखून और मनुष्य शोभा नहीं पाते।

बहुत से लोगोंको एक-दूसरे का प्रेम सहन नहीं होता। वे सगठन को तोड़नेकी कोशिश करते है। लोगोंको एक दूसरे विरुद्ध भड़काकर फूट फैलानेमें उन्हें आनन्द आता है। ऐसे

दोनोंकी तुलना इस कैंचीसे की जा सकती है, जो कपड़ोंको कतरनेका ही काम करती है। सुन्दरसे सुन्दर कपड़को चिन्दि-योंमें बदल देना ही उसका एक मात्र काम है। दूसरा काम वह जानती ही नहीं।

हाँ, इससे विरुद्ध स्वभाव वाले भी कुछ लोग होते हैं जो फटको सिल कर संगठनको फिरसे मजबूत करनेका काम करते हैं। अपनी निष्पक्षता न्याय प्रियता प्रेम सहानुभूति आदि के प्रभावसे ये लोग तमाम झगड़े शान्त कर दिया करते हैं। इन लोगोंकी तुलना सुईसे की जा सकती है। सुई बिखरी हुई चिन्दियोंको जोड़ कर फकत कपड़ा ही नहीं बनाती बल्कि उन्हें एक सुन्दर पोशाकके रूपमें बदल देती है।

आप इन दोनों प्रकारके लोगोंमें से किस प्रकारके बनना पसन्द करेंगे? द्वेषी बनना चाहेंगे या मिलनसार? झगड़ालू बनना अच्छा समझेंगे या प्रेमी? कैंची होना चाहेंगे या सुई?

मैं चाहती हूँ कि किसी भी संगठनमें कोई व्यक्ति कैंची बननेकी कोशिश न करे। सुई बन सके तो अच्छा है, परन्तु न बन सके तो भी कमसे कम कैंची न बने।

किसीको चढ़ा न सके तो न चढ़ाये, पर गिराये क्यों? किसीको कुछ दे न सके तो न दे पर छीने क्यों? कोई कमाई न कर सके तो न करे पर गमाई क्यों करे? किसीका [illegible] न कर सके तो न करे, पर अपमानित क्यों करे?

किसीका आप सगठित न कर सकें, तो न करें, पर विघटित क्यों करे ? पुण्य न कर सकें तो हर्ज नहीं, पर पापसे बचें —यही बहुत है।

दो मक्खियां थीं। एक चाशनी पर बैठी और दूसरी शक्कर पर। पहली चिपक गई और दूसरी कुछ खाकर उड़ गई। संगठनके लिए निःस्वार्थ बनना होगा। सघके हितके लिए कुटम्बके हितका त्याग करनेको शक्कर पर बैठने वाली मक्खी की तरह तैयार रहना होगा।

जहाँ दस बरतन एक साथ रखे हों वहाँ खनाखन हो ही जाती है। इसी प्रकार सघमें भी कभी किसीकी किसीके साथ खटपट हो ही जाती है। उस समयमें निष्पक्ष विचार करके न्यायपूर्वक उस झगड़ेको निपटा लेना चाहिये। दूध और छाछ के सपर्कसे दहीका कुण्डा भर गया और उससे खट्टा स्वाद आने लगा परन्तु विचारसे ज्यों ही उसे बिलोया, त्यों ही वहाँसे खट्टापन गायब हो गया—मक्खन या घी बन गया। वह घी जो भोजनके लगभग सभी पदार्थोंमें काम आता है। न्यायके द्वारा जिनका झगड़ा शान्त कर दिया जाता है, वे भी सगठनके लिए उपयोगी बन जाते हैं।

विचारमें भी जब चार गुणोंका एका होता है—विद्या, विनय, विवेक और विराम का, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या?

ताशमें बादशाहसे भी "एका" बड़ा माना जाता है। गणित में आप सख्याके प्रारम्भमें एका लिखते हैं तो बादमें शून्यका

मूल्य भी दस गुना हो जाता है। दो शून्य का सौ गुना और तीन शून्यका हजार गुना, परन्तु प्रारम्भमें एका न हो तो हजार शून्योंका मूल्य भी कुछ नहीं होगा।

इसी प्रकार जिस कुटुम्बमें समाजमें राष्ट्रमें एका नहीं होता, उस का कोई मूल्य नहीं होता—उसे किसी कार्यमें सफलता नहीं मिल सकती। एका विनयकी चाबी है। भारत पर चीन आक्रमण किया तो सारे देशमें हलचल मच गई। उस पर विजय प्राप्त करनेके लिए एका किया गया। देश की सभी राजनैतिक पार्टियोंने एक स्वरसे उस आक्रमणका विरोध किया। विचारोंमें मतभेद होते हुए भी देशकी रक्षा के लिए सब मिलजुलकर एक हो गये।

शत्रु देशको यह अनुभव हो गया कि चुनावके समय "तू तू—मैं मैं" करके बुरी तरह लड़ने वाले लोग भी देशकी रक्षा के लिए तुरन्त एकताके सूत्रमें बंध जाते हैं। वह चौकन्ना हो गया और उसने लड़ाई स्थगित कर दी। भारतके विरुद्ध उसने झूठा—सच्चा प्रचार शुरू कर दिया, परन्तु दुनियाके सभी देशोंको विचार करनेका अवसर मिला। चीनका अनैतिक जीवन और भारतका नैतिक जीवन सामने आया। अन्य देशोंने नैतिकता के पक्षमें भारतका समर्थन किया।

विचार भेद या मतभेद तो प्रति पल में हो जाता है—वह नुकसान नहीं करता। नुकसान होता है—मनभेदमें। मनमें भेद अर्थात् वैर न होना चाहिये।



"वेरं मज्झ न केणइ॥"

मेरा किसीके साथ वैर नहीं है—द्वेष नहीं है। यह भावना ही संगठनके लिए पर्याप्त है।

भाषाभेदसे भी मनमें भेद रखना ठीक नहीं। आब, पानी और वाटरमें क्या फर्क है? जिस भगवान्को जैन अरिहन्त कहते हैं उसीको हिन्दीमें ईश्वर, उर्दूमें खुदा, इंगलिशमें गॉड और अरबीमें अल्लाह कहते हैं। उपासनाकी पद्धतियोंमें भेद हो तो रहने दीजिये पर मनमें एक दूसरे धर्मानुयायीके प्रति प्रेम और हमदर्दी रहनी ही चाहिये। हिन्दुओंमें यदि मुसलमानोंके प्रति प्रेम और हमदर्दीकी भावना शुरूसे रहती तो धर्मके नाम पर भारतके दो टुकड़े क्यों होते? हिन्दुस्तान और पाकिस्तान क्यों बनते? आजके मुसलमान कलके हरिजन ही तो हैं, जिनसे हिन्दू घृणा करते रहे—अछूत मानकर नफरत करते रहे। क्या पाकिस्तान का निर्माण उसीका दुष्परिणाम नहीं है?

जाति, सम्प्रदाय रंग राष्ट्र आदि के नाम पर आज तक खूब होली खेलते रहे हैं—एक दूसरे को नेस्त-नाबूद करने की—मिटाने की कोशिश करते रहे हैं परन्तु उसमें किसी को सफलता नहीं मिली। अब मिटाने का प्रयत्न छोड़कर इन सबको मिलाने का प्रयत्न किया जाय—सब धर्म समभावी बन कर समन्वय की साधना की जाय तो होली के बदले दीवाली आ जाय।

संघर्ष संगठन का शत्रु है—असहिष्णुता संगठन की बाधा है अशान्ति संगठन की नाशिका है असन्तोष संगठन का रोड़ा

है, हम इन सबसे बचकर अपना मार्ग बनाना है अथवा बने हुए मार्ग पर चलना है।

प्रत्येक सम्प्रदाय का मूल एक है और फल भी एक है—कारण एक है और कार्य भी एक है। किसी को रोटी पसन्द है, किसी को हलुआ किसी को पूड़ी अच्छी लगती है किसी को डबल रोटी और कोई कोई तो केवल परौंठा ही पसन्द करते हैं परन्तु ये सारी वस्तुएं बनती हैं—आटे से ही। सबका मूल एक है। सबका फल है—भूख बुझाना। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय की उत्पत्ति अव्यवस्था, अशान्ति और दुःख के कारण हुई है और सब सम्प्रदायों का लक्ष्य है—सामूहिक रूपसे सुखवृद्धि। जैसा कि कहा जाता है —

"सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् सब लोग सुखी हों—नीरोग हों (स्वस्थ हों)—सबकी उन्नति हो—कोई दुःखी न हो।

इस प्रकार जब सबका मूल एक है और फल भी एक है, तब द्वन्द्व क्यों हो? घृणा क्यों हो? संघर्ष क्यों हो?

रोटी के लिए एक बार दो बिल्लियों में संघर्ष हुआ। न्याय करने के लिए हाथ में तराजू लेकर एक बन्दर आया और तरीके से सारी रोटी स्वयं खा गया। दोनों बिल्लियाँ बन्दर का मुँह ताकती रह गई परन्तु उनके पल्ले कुछ न पड़ा। यह

कहानी बचपन में आप लोगों ने भी सुनी होगी, परन्तु मुश्किल यही है कि कहानियों से हम शिक्षा नहीं लेते।

इस कहानी का सार यह है कि दो के झगड़े में तीसरेका लाभ होता है। बाप बेटे, भाई भाई अथवा दो मजहब वाले आपस में जरा सी बात पर तन जाते हैं। मामला सुप्रीम कोर्ट तक जाता है। दोनों पक्षों के लाखों रुपये वकीलों और बरिस्टरों की जेब में चले जाते हैं और तब कहीं कुछ न्याय मिल जाता है फिर भी विपक्षी को सन्तोष नहीं होता। क्योंकि लाखों रुपये खर्च करने पर भी पराजय ही उसके पल्ले पड़ती है। इसकी अपेक्षा आपस में ही किसी तटस्थ गम्भीर समझदार सत्पुरुष को मध्यस्थ बनाकर झगड़ा निपटा लेने में—समझौता कर लेने में चतुराई है, अन्यथा बिल्लियों की सी बेवकूफी कहलायगी।

संगठन का तत्व समझने के लिये दो फलों का नाम याद रखिये—नारंगी और खरबूजा। खरबूजे के ऊपर रेखाएँ होती हैं, परन्तु छिल्का हटाने पर मालूम होता है कि भीतर का भाग संगठित है। इसके विपरीत नारंगी के ऊपर रेखाएँ नहीं होतीं, परन्तु छिलका हटाते ही पता लग जाता है कि उसके भीतर अलग अलग फांकें हैं। आपको नारंगी की तरह नहीं, बल्कि खरबूजे की तरह संगठित बनना होगा—भलेही ऊपर-ऊपर से कुछ भेद बना रहे दिल में भेद बिल्कुल न हो।

राग और द्वेष छोड़ कर संगठन में शामिल हूजिये। जरा जरा सी बातों के लिए लड़ाई-झगड़ न करके बड़ी बड़ी बातों

की ओर ध्यान दीजिये। तुच्छ बातों के लिए उच्च बातों की उपेक्षा न कीजिये। गौण बातों को मुख्यता देकर मुख्य बातों को गौण मानना मूर्खता है।

क्या आप नहीं जानते कि ठीकरी के लिये घड़ा फोड़ने वाला बेवकूफ कहलाता है ? कीलों के लिए किला तोड़ने वाला ईंटों के लिए महल को मिट्टी में मिलाने वाला मूर्ख माना जाता है।

अपने दिल को उदार बनाइये—कूपमंडूकता छोड़िये। हृदय को हॉल के समान विशाल बनाने की कोशिश कीजिये। जब तक दीवालें नहीं टूटेंगी, कोठरियाँ ही बनी रहेंगी। भेद-भाव की दीवालें तोड़ कर कोठरियों को हॉल बनने दीजिये जिसमें सभी बैठने वालों को पूरा पूरा सुख मिले आराम मिले।

एक दूसरे की निन्दा न करके प्रशंसा कीजिये। प्रशंसा तो गुणों की ही की जाती है, इसलिए दूसरों में गुणों का अन्वेषण कीजिये। एक सड़ियल कुत्ते को देखकर जब सभी पांडव नाक-भौं सिकोड़ रहे थे, तभी श्रीकृष्ण ने उसकी प्रशंसा की थी। कहा था —"देखिये ! इस कुत्ते के दाँत कितने उज्ज्वल हैं।" पांडवों ने इस उत्तर से गुणग्राहकता सीखी। हम भी सीख लेनी चाहिए। संगठन को टिकाये रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य में यह गुण जरूरी है। "मेरी भावना" शीर्षक कविता में यही तो कहा गया है —

'गुणग्रहणका भाव रहे नित,
दृष्टि न दोषों पर जावे॥'

बहुत से लोग इस कविता का नित्य पाठ करते हैं, परन्तु संगठित बनने के लिए उसके भावों को जीवन में उतारना चाहिये।



## ७—चार भावनाएँ

भावुक भक्तो !

दान, शील, तप और भावना—इन चारों धर्मांगोंमेंसे चौथे अंगका—भावनाका महत्त्व ही सबसे अधिक है। यदि मनमें शुद्ध भावनाकी सरिता उमड़ न रही हो तो दान शील और तप निष्फल हो जाते हैं।

इतना ही नहीं, धर्मके नाम पर किये जाने वाले सारे क्रिया-काण्ड भी शुद्ध भावोंके अभाव में बेकार हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है —

"बड़ा धोता, बड़ा पोथा,
पढ़ता पगड़ा बड़ा।
तिलक छापा भाव बिन
होता सदा बेकार है॥"

—सूरजचन्द

वस्त्र पर साबुन कितना भी रगड़िये, उसका मैल जरा भी न मिटेगा, जब तक कि उसमें जलका उपयोग न किया जाय। ठीक इसी प्रकार ज्ञानके साथ भावनाका उपयोग होने पर ही आत्मशुद्धि हो सकेगी। आत्मा यदि मैला वस्त्र है—तो ज्ञान [illegible] है और भावना जल। इस उपमासे [illegible] सकता है।

एक संस्कृतके कविने कहा है —"भावना भवनाशिनी ॥"
अर्थात् भावना उत्कृष्ट हो तो भवका जन्म मरणके चक्रका भी नाश हो जाता है।

भावना उत्कृष्ट कैसे हो ? इसका उत्तर इस प्रश्नके उत्तर में समाया हुआ है कि धनकी प्राप्ति कैसे हो ? यदि हम धन की जरूरत है, तो हम धनवान के पास जायेंगे। यदि हमें विद्याकी आवश्यकता है तो हम विद्वान्के पास जायेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि हम उत्कृष्ट भावना चाहिये तो हम भक्तोंके पास पहुचेंगे—सन्तोंकी शरण जायेंगे—साधुओं की संगति करेंगे।

यदि किसी शहरमें पहुँचने के लिए अपने गाँवसे हम बाहर निकल पड़ें और बीचमें ही कहीं एक रास्तेसे निकले हुए अनेक रास्ते दिखाई पड़ें तो यह पता कैसे लगायें कि अमुक रास्ता ही हम अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँचाने वाला है ?

इसके केवल दो उपाय हैं। पहला यह कि हम किसी जानकारको साथ रखें। दूसरा यह कि हम इतने पढ़े-लिखे हों कि मीलके पत्थर पर खुदे हुए अक्षर पढ सकें और इस तरह स्वयं ही ठीक रास्ते का पता लगा लें।

ठीक इसी प्रकार भावना को उत्कृष्ट बनानेके लिए या तो अनुभवियोंका अनुसरण करें अथवा धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करके स्वयं जान लें।

प्राचीन भाषाओंमें लिखे हुए धर्मग्रन्थोंका स्वाध्याय करके रहस्यका समझना सर्वसाधारणके वशकी बात नहीं है। इस-

लिए पहला उपाय ही सरल और अधिक उपादेय मालूम होता है।

अनुभवियोंकी महत्ता इस लोकोक्तिसे जानी जा सकती है —

'जहाँ न पहुँचे रवि।
वहाँ पहुँचे कवि॥
जहाँ न पहुँचे कवि।
वहाँ पहुँचे अनुभवी॥"

अनुभव अमृतके समान मधुर होता है उसमें द्वेषादिका जहर नहीं होता। किसीने ठीक ही तो कहा है —

"अनुभव अमृत जहाँ बहे।
वहाँ न कुछ भी जहर रहे॥'

यदि रहे तो समझना चाहिये कि वहाँ सच्चा अनुभव नहीं है।

अनुभवियोंकी संगतिसे यदि हमारी भावनाएँ शुद्ध होजायँ तो ईर्ष्या द्वेष, वैर-विरोध आदि तुरन्त नष्ट हो जायें। उन्नति के लिए प्रतिस्पर्द्धा रहे तो बुरी बात नहीं कही जा सकती परन्तु ईर्ष्या मनमें पैदा नहीं होने देनी चाहिये। बच्चे दो दल बनाकर कबड्डी खेलते हैं। एक दल वाले दूसरे दल वालेको * मारते हैं। दूसरे दल वाले भी मरते हैं (बाहर बैठ जाते हैं), फिर भी खेल पूरा होने पर पता लगता है कि किसीने

* कबड्डीमें एक दल वाला 'कबड्डा कबड्डा' बोलता हुआ दूसरे दल वालोंको छूता है ... कहते हैं।

किसीको नहीं मारा और न कोई मरा। सभी हँसते खेलते अपने अपने घरकी राह लेते हैं। यही बात जीवनमे होनी चाहिये। जीवन भी एक खेल है। दुनिया एक रंगमंच है। सभी प्राणी अभिनेता हैं—खिलाड़ी हैं। हमे बिना ईर्ष्या द्वेष के सारे खेल खेलने चाहिये। खेलमे खेलके नियमों का सबको पालन करना पडता है वैसे ही जीवनमे भी नैतिक नियमोंका पालन करना जरूरी है।

नियमोंका पालन भी भावनापूर्वक होना चाहिये। दिखावटी या ऊपर ऊपर तो नियमों का पालन किया जाय और भीतर भाव अशुद्ध हों तो भी कोइ लाभ न होगा। भावना छिपी नहीं रहती। कभी न कभी प्रकट होकर पोल खोल ही देती है। इसलिए सतर्क और चिन्तित रहना पडता है। इस तरह कर्त्तव्यका पूरा पालन करने पर भी पूरा आनन्द नहीं आता। इससे तो यही अच्छा है कि हम निश्चिन्तता के साथ अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए शुद्ध भावनाओंको हृदयमें स्थान दें और वास्तविक आनन्दका उपभोग करें।

भावनाएँ एक संस्कृत श्लोकके अनुसार चार हैं —

'सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव।"

कोई भक्त भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहता है —हे

भगवन्! मेरी आत्मा ये चार काम करे अथवा उसमें ये चार भावनाएँ बनी रहें —

(१) प्राणियों पर मित्रता (२) सज्जनोंको देख कर हर्ष, (३) दुखी जीवों पर दया, और (४) प्रतिकूल परिस्थितियोंमें मध्यस्थता।

आइये, अब हम इन चारों भावनाओं पर क्रमश कुछ विस्तार से विचार करें।

सबसे पहली भावना है—मित्रता। भ० महावीर की मित्रता सभी प्राणियोंसे थी। जैसा कि उन्होंने कहा है —

"मित्तीमे सव्वभूएसु॥"

[ मेरी सभी प्राणियोंसे मित्रता है ]

हमें भी एसा ही करना है। यदि हमारी सबसे मित्रता होगी तो हम किसीको कष्ट न पहुँचायेंगे। जिसे कष्ट पहुँचाया जाता है वही हमारा शत्रु बन जाता है।

हिन्दुओंके धर्म शास्त्रोंमें भी एक शब्दका प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। वह क्या है? अजातशत्रु। जिसका कोई शत्रु नहीं पैदा हुआ उसे अजात शत्रु कहते हैं। हमें भी अजातशत्रु बननेकी साधना करना है।

हमारी मित्रताका क्षेत्र विशाल होना चाहिये। वह सिर्फ कुटुम्ब, समाज प्रान्त, राष्ट्र और विश्वके मानवों तक ही सीमित न रहे पशु पक्षियोंका भी उसमें समावेश हो जाय। प्रत्येक हमारा मित्र होना चाहिये अथवा

हमें मित्र मानना चाहिये; फिर भले ही वह अमीवा हो या इन्द्र—एकेन्द्रिय हो या पंचेन्द्रिय—त्रस हो या स्थावर—अपना हो या पराया—दूरस्थ हो या निकटस्थ—हमारे स्वार्थ का साधक हो या बाधक—बच्चा हो या बूढ़ा—नर हो या नारी—अमीर हो या गरीब—अपग हो या स्वस्थ।

एक बार एक साधुने अपने शिष्यको 'मिच्छामि दुक्कड' का मन्त्र सिखाया। जिसका आशय यह था कि यदि अपने द्वारा किसीका कोई अपराध हो जाय तो उससे क्षमा माँग लेनी चाहिये। शिष्यने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह मन्त्र याद कर लिया। अपने गुरुजीके साथ विहार करता हुआ वह एक गाँवमें एक कुम्हारके घरके सामने वाले एक राम मन्दिरमें रात बितानेके लिए ठहर गया। प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निपटते ही उसे एक खेल सूझा! ऐसा खेल—जिसमें गुरुजीके मन्त्रकी परीक्षा भी हो सकती थी।

घरके बाहर पड़े हुए कुम्हारके बर्तनोंकी ओर उसने एक पत्थर फेंका। घड़ा मिट्टी का था। उसमें पत्थरकी चोट से छेद हो गया। कुम्हारको यह देख कर क्रोध आया, परन्तु वह उसे मन ही मन पी गया। शिष्यने दूसरा पत्थर फेंका और दूसरा घड़ा फोड़ दिया। इस बार कुम्हारने डंडा हाथमें उठा लिया, परन्तु शिष्यके द्वारा 'मिच्छामि दुक्कड' का उच्चारण सुनते ही फिर शान्त हो कर अपने कायमें तन्मय हो गया।

शिष्यने सोचा कि अब डरनेका क्या बात है। गुरुजीका

मन्त्र अमोघ है। उसके प्रताप से कोई मेरा बाल बाँका नहीं कर सकता।

उसने तीसरे पत्थरका प्रहार किया और तीसरा घड़ा भी फूट गया। इस बार कुम्हारसे न रहा गया। उसकी आँखें लाल लाल हो गई। वह डंडा लेकर उसे मारनेके लिए दौड़ा। शिष्यने कई बार उस मन्त्रका जाप किया—जोरसे उसका उच्चारण किया किन्तु कुम्हारने उसकी कोई परवाह नहीं की। शिष्यके पास पहुंचकर उसने आठ-दस प्रहार कर दिये—डंडे। शिष्यके सिरसे मार चोटोंके रक्त बहने लगा। सिर पर किये गये अपने हर एक प्रहार के बाद कुम्हार भी "मिच्छामि दुक्कडं" मन्त्र बोलता रहा।

जब शिष्यने भविष्यमें ऐसा न करने का संकल्प किया, तभी कुम्हारने उसका पीछा छोड़ा।

इस कथाका सन्देश यह है कि हमारी भावना यदि अशुद्ध हो तो दुनियाका कोई भी मन्त्र हमें बचा नहीं सकता। मन्त्रों को बिना समझे रटने या जपनेसे कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती। यदि नुकसान करना न छोड़ें और माफी मांगते जांय तो इस तरह माफी नहीं मिल सकती।

शत्रुता की भावनासे ही दूसरोंको नुकसान पहुँचाया जाता है। हमें याद रखना चाहिये कि दुनियाके किसी एक प्राणीके प्रति भी जब तक हमारे हृदयमें द्वेष है—शत्रुताकी भावना है तब तक हम आराधक नहीं, विराधक हैं।

आराधकको चाहिये कि वह विराधक न बने साधक बने।
[illegible] । महान पर्व है। [illegible]

दिल साफ करके कोई भी व्यक्ति साधक बन सकता है। परंतु वैरकी भावना जल्दी नहीं मिटती। प्रति वर्ष संवत्सरी प्रेम का संदेश लेकर आती है, पर कोई सुनने वाला नहीं मिलता। न्र वर्षों तक ही क्यों? भावों तक—जन्मान्तरों तक चालू रहता है।

आजसे तीन हजार वर्ष पहले भी यही हाल था। कमठासुरने पार्श्वनाथके साथ वैर किया था जो दस जन्मों ( भवों ) तक चालू रहा। फिर आजकी तो बात ही क्या?

अजात शत्रु बने बिना यह वर रखनेकी मनोवृत्ति नष्ट न होगी और मैत्री भावकी मनमें प्रतिष्ठा न होगी। 'मेरी भावना" शीर्षक कवितामें आता है —

'मैत्रीभाव जगतमें मेरा,
सब जीवोंसे नित्य रहे॥'

हमें इस भावनाको जीवनमें उतारनेकी भरसक कोशिश करनी चाहिये। मित्रता अमृतके समान मधुर है और द्वेष जहर के समान कड़ुआ। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो मित्रता मिश्री की तरह मीठी है और द्वेष नमककी तरह खारा।

यद्यपि नमक भी सफेद होता है और मिश्री भी सफेद होती है, फिर भी मक्खियाँ मिश्री पर ही बैठेंगी, नमक पर नहीं। ठीक इसी प्रकार द्वेषी भी मनुष्य है और प्रेमी (मित्र) भी मनुष्य ही है, फिर भी जनता द्वेषीके प्रति नहीं, प्रेमीके प्रति ही आकर्षित होगी। आप प्रेमी बनिये—सबके मित्र बनिये।

दूसरी है—प्रमोद भावना। सज्जनोंको देखकर प्रसन्न हूजिये। किसी भी महा मानव की प्रशंसा करते समय केवल उसके गुण देखिये और केवल गुणोंकी ही चर्चा कीजिये। यह मत सोचिये कि वह हमारे देशमें हुआ है या विदेशमें—हमारे सम्प्रदायका है या अन्य किसी सम्प्रदाय-का—पुराने जमानेका है या आजका आदि।

नीतिकार कहते हैं —

'परो अपावन ठौरमें
कंचन तजै न कोय॥'

सोना यदि अपवित्र स्थानमें—कीचड़में या नालीमें पड़ा हो तो भी कोई उसे नहीं छोड़ता। शत्रुमें या दुष्टमें अच्छे गुण हैं तो उन्हें मत छोड़िये—अपनानेका प्रयत्न कीजिये। दुर्गुण अपनेमें हों तो भी छोड़ दीजिये। अवगुण गुरुजीमें हों तो भी मत लीजिये जिससे कि वे आत्मसुधार कर सकें। नीतिकार कहते हैं —

"शत्रोरपि गुणा वाच्याः
दोषा वाच्या गुरोरपि॥"

शत्रुके भी गुण और गुरुके दोष मत छिपाइये कहिये।

गुणिषु न च लिङ्ग,

न च वय ॥"

गुण ही पूज्य होते है, इसलिए गुणियोंके लिंगका और उनकी उम्र का विचार न करना चाहिये। यह नही सोचना चाहिये कि यह स्त्री है या पुरुष ? अथवा यह बच्चा है, बालक है किशोर है तरुण है प्रौढ है या बूढ़ा ? प्रत्येक सद्गुणीकी प्रशसा कीजिये। प्रत्येक सज्जनको देखकर प्रसन्नता प्रकट कीजिये। बस, यही प्रमोद भावना है।

तीसरी है—कारुण्य भावना।

दूसर दु खी प्राणियोंको दु ख देखकर द्रवित हो जाना करुणा है। कहा है —

"दुखियोंके दुखका दृश्य
दया दिखलावें।
छुटे करुणाकी धार
अश्रु बरसावें ॥'

—मन्थनमहाशास्त्र

किसी विचारकने कहा है —

'पापसे घृणा करो, पापीसे नही। बहुत ठीक है। मैले वस्त्रको देख कर हम मैलसे ही घृणा करनी चाहिये वस्त्रसे नही। मैले वस्त्र को फाड़नेसे मैल नष्ट नही होता, तरीके से उसका मैल निकालना पडता है। वैसे ही पापीको मार डालने से वह सुधर नही जाता, तरीकेसे उसका हृदय परिवर्त्तन करना पड़ता है।

जिसका दिल कोमल होता है वह दुखियों की दुर्दशा से पिघले बिना नहीं रहता। सन्तों का हृदय इसीलिए मक्खन के समान कोमल माना जाता है, किन्तु इस उपमा की सन्त तुलसीदासने खूब खबर ली है। उनके शब्द ये हैं —

"सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहइ न जाना॥
—रामचरितमानस

सन्तों का हृदय मक्खन के समान होता है ऐसा कवियों ने कहा जरूर है पर उन्हें कहना आया नहीं। क्योंकि—

"निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर दुख द्रवै सो सन्त पुनीता॥"

मक्खन तो अपने ऊपर जलन (अग्नि का ताप) होने पर ही द्रवित होता है, परन्तु पवित्र सन्त तो दूसरों के सन्ताप (दुख) से द्रवित होते हैं।

महावीर स्वामी अहिंसा के और गौतम बुद्ध करुणा के अवतार माने जाते हैं। अहिंसा और करुणा में कोई विशेष भेद नहीं है। अहिंसा कार्य है और करुणा कारण। हम कारण को अपनाकर कार्य तक पहुँचते हैं। ये दोनों महापुरुष भी मनुष्य थे और हम भी मनुष्य हैं। हमें यथाशक्ति इनके पद-चिन्हों पर चलना है। चलना तभी सम्भव है, जब हम करुणा की भावना को हृदयंगम कर लें।

चौथी है—माध्यस्थ्य भावना। सुख और दुख में समभाव रखना ही आशय है।

"दुख मे तड़पें नहीं,
सुख मे फूलें नहीं।
प्राण जायें मगर,
धर्म भूलें नहीं॥'

—गीतापरयक

संसार में सभी दिन एक से नहीं बीतते। कभी सुख की अधिकता रहती है और कभी दुख की। कहा भी है —

'कभी सुख है, कभी दुख है
इसी का नाम दुनिया है॥

रामचन्द्रजी ने जब यह सुना कि मेरा राज्याभिषेक होने वाला है, तब उन्हें कोई हर्ष नहीं हुआ-न घमण्ड हुआ और थोड़ी ही देर बाद जब यह सुना कि मेरा १४ वर्ष के लिए बनवास होने वाला है तब भी कोई विषाद नहीं हुआ न शोक हुआ। दोनों अवस्थाओं में उनके चेहरे की कान्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

सुख दुख की तरह लाभ-हानि, यश अपयश, निन्दा-स्तुति आदि से भी क्षुब्ध न होना साधक का कर्त्तव्य है। जीत या हार की पर्वाह न करके हमें सीधे सच्चे मार्ग पर चलते रहना चाहिये। इतना ही क्यों? यदि हमारा लक्ष्य ठीक है, तो हमें जीवन मरण से भी विरक्त रहना होगा। जीवन के प्रति आसक्ति न हो और मृत्यु का भय न हो, तभी हमें अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सहूलियत होगी।

भारत को स्वतन्त्र करने का पवित्र लक्ष्य सामने रख [illegible] गांधीजी चले तो उन्हें गालियां भी खानी पड़ीं और [illegible] भी, परन्तु इनसे वे क्षुब्ध न हुए और अन्त में उन्हें [illegible] प्राप्त हो ही गई।

आध्यात्मिक मार्ग के पथिक का भी ऐसा ही [illegible] पवित्र लक्ष्य होता है—आत्मा को स्वतन्त्र करने का। [illegible] अंग्रेजों के अधीन था और आत्मा कर्मों के अधीन है। जैसे भारतवासी ब्रिटिश-सरकार के गुलाम बन गये थे वैसे ही प्रत्येक संसारी जीव कर्म सरकार का गुलाम है। हमें यह गुलामी मिटाकर आजादी हासिल करनी है। जैसे अंग्रेजों की गुलामी नष्ट करने के लिए हमें बड़ी बड़ी कुर्बानियाँ करनी पड़ी थीं वैसे ही कर्मों की परतन्त्रता नष्ट करने के लिये प्रत्येक आत्मा को बड़े से बड़ा त्याग करना पड़ता।

अनाथी मुनि ने ऐसा ही तो किया था। उनके शरीर में जब भयंकर बीमारियाँ पैदा हो गईं और कुटुम्बीजन रोने धोने के सिवाय और कुछ न कर सके, रोगों के दुःख का हिस्सा न बँटा सके और न कोई उपचार ही कर सके, लगातार छ महीने तक बीमारियों की वेदना [illegible] को अकेले ही भोगनी पड़ी तब उनकी आत्म [illegible]-विवेक जागृत [illegible] उन्होंने समझ लिया कि कर्मों की परतन्त्रता के कारण रोग पैदा होते हैं इसलिए अब बीमारियों को मिटा [illegible] कर्मों से आत्मा [illegible]

जब इस महान स नाद अनाथी मुनि स्वस्थ हो गये और कुटुम्बी लोग सोने चाँदी के बर्त्तनों में पक्वान्न परोसने लगे, तब बिना कुछ खाये पिये ही वे मुक्ति का लक्ष्य बनाकर घर से चल पड़े।

जंगल में एक संन्यासी के वेष में जब ध्यानमग्न तरुण सुन्दर अनाथी मुनि को महाराज श्रेणिक ने देखा और उन्हें एक अनाथ समझ कर अपने महल मे आश्रय देने की इच्छा प्रकट की, तब अनाथी मुनि ने स्पष्ट कहा —'राजन्! आप स्वयं भी अनाथ हैं। जो अनाथ हैं वह दूसरे का नाथ (रक्षक या आश्रयदाता) कैसे बन सकता है? प्रत्येक प्राणी अनाथ है क्योंकि इस दुनिया में उसका कोई रक्षक नहीं है। वह स्वयं अपना नाथ बन सकता है—यदि बनना चाहे तो।"

मुनिके कथनका आशय समझकर महाराज श्रेणिक उनकी मन ही मन प्रशंसा करते हुए वन्दना करके चले गये।

तात्पर्य यह है कि आत्मा को कर्मों से मुक्त करनेके लिए जैसे अनाथी मुनिने पकवानों से भरी हुई सोने चाँदी की थालियोंका—घरका—परिवार का—महाराज श्रेणिकके द्वारा दिये जाने वाले आश्रयके प्रलोभनका त्याग कर दिया, वैसा ही त्याग करनेके लिए हमें भी सदा कमर कस कर तैयार रहना होगा। प्रभुसे एक कविके शब्दोंमें यही प्रार्थना करनी होगी —

'हे प्रभु फकीरी ...

भी लोग किंशुककी अपेक्षा गुलाबको अधिक पसन्द करते हैं। क्यों? एकमे सुगन्ध होती है, दूसरेमे नहीं। आकर्षण गुण इसी सुगन्धमे होता है, सुन्दरतामें नहीं।

इन चारों भावनाओंके द्वारा आप भी आत्मामें सुगन्ध पैदा करके गुलाबके फूल बन सकते हैं, अन्यथा "निर्गन्धा इव किंशुका" आपको कोई नहीं पूछेगा।

संस्कृतमें एक कहावत है —

'अगच्छन् वैनतेयोऽपि
पदमेकं न गच्छति ॥"

यदि न चले तो गरुड़ भी एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता। आगे बढ़ना है तो चलिये—अपने जीवनमे परिवर्तन कीजिये—सुधार कीजिये। बिना आचरणके हजारों उपदेशोंकी अपेक्षा आचरण वाला एक उपदेश कहीं अच्छा है।

धर्मकी—कर्तव्यकी—शुद्ध भावनाओंकी बातें कहने वालों की भी कमी नहीं है और सुनने वालोंकी भी कमी नहीं है। कमी है अमल करने वालोंकी।

एक कविने प्राचीन हिन्दीमे ठीक ही कहा है —

"कहता कहता थकी जबान।
तो भी न आयो हिरदै ज्ञान ॥
सुणी सुणीने थाक्या कान।
तो भी न आया मनमे ज्ञान ॥'

स्कूलके बच्चे प्रति वर्ष एक एक कक्षा पास करते हैं, परन्तु हमलोग नहीं करते। दस वर्षमें बालक मेट्रिक पास कर लेते

ई, परन्तु इस वर्षमें हम एक सामायिक भी पास नहीं कर पाये! कितनी विचित्र बात है? इस वर्ष पहले हमारी जो धार्मिक अवस्था थी, आज भी यदि वही रही—उसमें कोई परिवर्तन परिवर्द्धन नहीं हुआ तो हमारा विकास कैसे होगा?

पहले सामायिकमें गुस्सा आता था आज नहीं आता तो अच्छा है—एक कक्षा आपने पास कर ली। इसी प्रकार धीरे धीरे आगे बढ़िये—जीवनको पूर्ण निष्पाप बनाइये और चार भावनाओंके द्वारा अन्तस्तल को पवित्र करके धरम धम की सुगन्ध भर दीजिये! इत्यलं

